Chapter-1

# प्रथम अध्याय

# अंचल शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या

हिन्दी भाषा में देश के एक प्रान्त-भाग के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला 'अंचल' शब्द मूलतः संस्कृत शब्द 'अञ्चल' है। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने व्याकरण तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर इस शब्द की व्युत्पत्ति को प्रकाशित किया है। यह पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'अञ्च' धातु में 'अलच्' प्रत्यय के योग से बना है तथा व्याकरणिक दृष्टि से योगरुढ़ है। 'अञ्च' धातु पाणिनीय धातु के प्रसिद्ध दस गणों में से प्रथम 'भ्वादि' गण में प्रयुक्त है तथा उभयपदी है। 'अलच्' प्रत्यय 'कृदन्त' प्रत्यय के एक भाग 'उणादि' प्रत्ययों में उपलब्ध होता है। यद्यपि सम्पूर्ण 'उणादि' प्रकरण में कहीं भी इस प्रकार का विशेष विधान नहीं है जिसके आधार पर 'अञ्च' धातु में 'अलच्' प्रत्यय का योगकर 'अञ्चल' शब्द की व्युत्पत्ति की जा सके तथापि पाणिनीय व्याकरण में एक सूत्र है- 'मङ्गेरलच्'।[१] यहाँ 'मङ्ग' धातु में 'अलच्' प्रत्यय का योग कर 'मङ्गल' शब्द का निर्माण किया गया है। इसी शब्द के साम्य पर 'अञ्चल', 'चञ्चल' आदि शब्द बने हैं।

हलायुध कोश[२] में अंचल शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है- 'अञ्चल' पु. (अञ्चति प्रांत भागं गच्छति। अञ्च+अलच्)

वस्त्र प्रांत भागः। आंचल इति भाषा।'

'उरूः कुरङ्ग का दृशश्चल चेलाञ्चलो भाति;

इति साहित्य दर्पणे।'

'कर्पास वादरं प्रोक्तं वस्त्रयान्तोमतेऽञ्चलः।'

पद्मचन्द्र कोश[३] में कोशकार ने अंचल शब्द का अर्थ वस्त्र का छोर, कोने का भाग, कपड़े का कोना, पल्ला ही लिया है।

संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी में भी अंचल शब्द का अर्थ वस्त्र के (विशेषकर स्त्रियों के) छोर से ही लिया गया है।[४] भाषा शब्द कोश

---

१. पाणिनीः सिद्वान्त कौमुदी, उणादि प्रकरण (अन्तिम सूत्र) संख्या-७५९.

२. जयशंकर जोशी, हलायुध कोश, पृष्ठ-१११.

३. महामहोपाध्याय पं. गणेशदत्त शास्त्री, पद्मचन्द्र कोश, पृष्ठ-८

४. सर मौनियर विलियम, संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ-११

में अंचल का अर्थ है– साड़ी का छोर जो सामने रहता है, पल्ला, आँचर या अचरा, किनारा एवं सीमा का समीपवर्ती भाग।[१] इस प्रकार संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में अंचल शब्द समान अर्थ का सूचक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य में जब हम अंचल शब्द का प्रयोग करते है तो वहाँ इसका आभिधामूलक अर्थ ही अभिप्रेत नहीं होता अपितु हमें इनका लक्षणामूलक अर्थ ग्रहण करना पड़ता है। अंचल का आभिधामूलक अर्थ वस्त्र का प्रान्त भाग या पल्ला है। साहित्य में इसे देश के प्रान्त भाग के अर्थ में प्रयुक्त करते है। परन्तु केवल देश के प्रान्त भाग से ही यह अर्थ नहीं निकलता। कोई भी विशेष–भाग जिसकी अपनी एक संस्कृति हो, अपनी एक भाषा हो, अपनी समस्याएँ हों, अपनी रीति–रिवाज, सुख–दुख, जीवन–प्रणाली, आचार– विचार, परम्पराएँ एवं मान्यताएँ हों और उसकी अपनी खास विशिष्टता हों, को अंचल कहा जा सकता है। इसका कारण भी लक्ष्यार्थ ही है। अत: अंचल शब्द का जो अर्थ अपने विशिष्ट प्रयोजन में रूढ़ हो गया है वह लक्षणामूलक दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है। "इस दृष्टि से अंचल का लाक्षणिक अर्थ भी नये रुप में व्यंजित होता है और हम देश के छोट-छोटे अंचलों की बात करने लगते है जिनकी अपनी सभ्यता एवं अपनी संस्कृति होती है। इनका व्यक्तित्व और अस्तित्व होता है, इसलिये इन्हें एक विशिष्ट इकाई के रूप में चित्रित किया जा सकता है। किसी पर्वत–श्रृंखला के सहारे बसे, किसी नदी के किनारे स्थित, किसी सागर तट पर फैले ग्रामों को, जिनकी बोली, उत्सव–त्यौहार, रहन–सहन, संस्कार, लोक–कथायें, लोक–गीत आदि एक से होते हैं, जो एक सी समस्याओं से ग्रस्त होते है तथा एक–सी जीवन व्यवस्था से बँधे होते है; अंचल की संज्ञा से अभिहित किये जा सकते है।"[२] डॉ. आदर्श सक्सेना का प्रस्तुत मत अंचल शब्द से व्यंजित होने वाले अर्थ की व्यंजना करने में काफी हद तक समर्थ है।

'अंचल' शब्द में 'इक' तद्धित प्रत्यय लगाकर 'आंचलिक' विशेषण पद निर्मित किया गया है। श्री शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में किसी विशेष "अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचना को हम आंचलिक कह

---

१. पं. रामशंकर शुक्ल रसाल, भाषा शब्द–कोश, पृष्ठ–८

२. डॉ. आदर्श सक्सेना, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि, पृष्ठ–२१.

–सकते है।"[1] हिन्दी उपन्यास के सन्दर्भ में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सुप्रसिद्ध कथाकार स्व. फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने किया था, जिसका अर्थ है –अंचल सम्बन्धी। उपन्यास विधा के विशेषण के रूप में यह शब्द निश्चय ही पारिभाषिक रूप ग्रहण कर एक सीमित अर्थ को प्रकट करता है।

'आंचलिक' की तरह 'आंचलिकता' शब्द भी 'अंचल' से ही निष्पन्न हुआ है। 'आंचलिक' विशेषण है और 'आंचलिकता' भाववाचक संज्ञा। यदि हम 'अंचल', 'आंचलिक' एवं 'आंचलिकता' तीनों शब्दों के अर्थ–रूप पर विचार करते है तो लगता है कि एक ही भाव से जुड़े होने पर भी प्रयोग के अनुसार इनमें अर्थ–भेद हो जाता है। 'अंचल' जहां एक क्षेत्र–विशेष या जनपद का अर्थ देता है, वहीं 'आंचलिक' शब्द अपने में उस जनपद या क्षेत्र की विशेषताओं का समाहार करता है, जबकि 'आंचलिकता', 'आंचलिक' वैशिष्ट्य की अभिव्यक्ति का नाम है।

डॉ. नगीना जैन ने अपने शोध–ग्रन्थ 'आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास'[2] में 'आंचलिकता' के अर्थ को लेकर गहराई से विचार किया है। उनके अनुसार "आंचलिकता एक विशिष्ट दृष्टिकोण ( औपन्यासिक दृष्टिकोण ही) है, जो अंचल या क्षेत्र–विशेष की सम्पूर्ण जीवन–प्रणाली की ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक धारणा प्रस्तुत करता है, किसी भी काल में, किसी क्षेत्र–विशेष की संम्पूर्ण भौगोलिक संस्कृति का निर्दशन कर उसके सामान्य सत्य का उद्घाटन करता है, जहाँ हर घटना, हर पात्र, हर प्रक्रिया ऐतिहासिक परम्परा से अविच्छिन्न रहकर एक सामान्य सत्य, भौगोलिक सीमांत का संकेत करती है।" आधुनिक आंचलिकतावाद का उद्देश्य 'विशिष्ट आंचलिक वातावरण में दिन–प्रतिदिन की सामान्य घटनाओं तथा वर्ग–विशेष के प्रतिनिधि पात्रों की जीवन–प्रक्रिया के माध्यम से एक खास भौगोलिक संस्कृति का उद्घाटन'[3] करना है।

उक्त धारणा के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि 'आंचलिकता' किसी अंचल विशेष के जन–जीवन का सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत करता है। प्रत्येक अंचल की अपनी विशेषताएँ होती है, उसकी जीवन–पद्वति होती है, उसकी अपनी प्राकृतिक एवं भौगोलिक संरचना होती हैं। उसकी आर्थिक,

---

१. श्री शिवप्रसाद सिंह, 'आंचलिकता और आधुनिक परिवेश' कल्पना,– मार्च–१९६५, पृष्ठ–२९
२. डॉ. नगीना जैन, 'आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ–६
३. श्री मधुकर गंगाधर, 'आलोचना–३५', जनवरी–१९६६

सामाजिक एवं धार्मिक रीति–नीति होती हैं। उसके व्यक्तित्व को बनाने, उभारने और बिगाड़ने वाली विशिष्ट स्थितियाँ होती है, इन सबके सजीव चित्रांकन में कलाकार की जो प्रमुख दृष्टि काम कर रही होती है उसी को 'आंचलिकता' की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

सामान्य रूप से आंचलिकता का अर्थ किसी विशेष अंचल में समाहित उस परिवेश से है, जहाँ विशिष्ट रूप से एक निश्चित सांस्कृतिक परंपरा का प्रचलन होता है। किसी प्रदेश विशेष के विशिष्ट सीमावर्ती भू–भाग से संयुक्त उस लोक या जन–परिवेश को भी आंचलिकता से संलग्न किया जा सकता है जो अपनी एक निश्चित पहचान बनाकर आचार–व्यवहार करता हो।

जैनेन्द्र कुमार ने आंचलिकता को एक विशिष्ट सांस्कृतिक प्रवृत्ति माना है। उनके अनुसार "आंचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है जिसके केन्द्र में अमुक पात्र या चरित्र उतना नहीं जितना वह स्वयं भू–भाग अंचल है। पात्र स्वयं में इष्ट नहीं, मानों अमुक समष्टि के जीवन की यथार्थता को उभार देने में ही उसकी चरितार्थता है।"[१] वस्तुतः आंचलिकता एक अन्तर्मुखी संस्कृति हैं जो विस्तृत यथार्थ से अलग होकर अपनी विशिष्टता का द्योतन करती हैं। इसकी एक निश्चित संस्कृति होती है, एक निश्चित समाज होता है और समाज के कुछ मानक–मूल्य होते हैं। इस प्रकार अपनी विशिष्ट पहचान को ज्ञापित करनेवाला यह अन्तर्मुखी जनबोध ही आंचलिकता के नाम से जाना जाता है।

## परिभाषा

आंचलिक परिवेश को लक्ष्य बनाकर लिखा गया उपन्यास आंचलिक उपन्यास के नाम से जाना जाता है। यद्यपि अंग्रेजी उपन्यास–साहित्य के विद्वान लेखक वॉल्टर एलन ने मारिया एजवर्थ के आंचलिक उपन्यास 'कॉसल रेकरेंट; ( Costel reckrent) के प्रकाशन वर्ष सन् १८००ई. को विश्व उपन्यास साहित्य में अति महत्वपूर्ण वर्ष स्वीकार किया है।'[२] फिर भी किसी अंचल विशेष को लक्ष्य बनाकर उपन्यास लिखनेका कौशल

---

१. महेन्द्र चतुर्वेदी (सं.), हिन्दी उपन्यासः सिद्धांत और विवेचन, पृष्ठ–१७८
२. डॉ. ह. के. कडवे, हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता की प्रवृत्ति, पृष्ठ–९६

बीसवीं सदी के साहित्य जगत की निजी विशेषता रही है। यह काल खंण्ड यथार्थवादी साहित्य-सृजन को महत्व देता रहा है। इसका कारण यह है कि बीसवीं सदी के जन-मानस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में दो विश्व युद्धों से उत्पन्न विभीषिकाओं का प्रभाव है। विश्व की वैचारिक क्रन्तियों का उदय भी इस काल में फलित होता दिखाई पड़ता है।आंचलिक का आग्रह इस पृष्ठभूमि से वंचित नहीं है। क्षेत्रीय आन्दोलनों ने साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ स्वतंत्रता का विगुल बजाया। सांस्कृतिक अस्मिताएं संघर्ष में सक्रिय हुई। जातीय साहित्य में संघर्ष की चेतना और स्वतन्त्रता की मांग तीव्र अभिव्यक्ति पाने लगी, साथ ही औद्योगिक क्रान्ति और सभ्यता की आधुनिकता का दबाव, कृत्रिमता और मूल्य-हीनता से नीरस एवं अविश्वसनीय जीवन-पद्वति की ऊब पैदा हुई। जन मानस का झुकाव आत्मिक जीवन के लिए नदियों, पहाडों, वनों, गावों में बसे जन-जीवन की सहजता और सरसता, की ओर आकर्षित होने लगा। इस प्रवृतिने आंचलिकता को महत्व दिया। नृतत्वशास्त्र की दृष्टि से शोध करने वाले समाज-वैज्ञानिक लोक संस्कृति के प्रति बौद्धिक वर्ग को उत्सुक बनाया। शहरी यांत्रिक सभ्यता से अप्रभावित जन-जीवन के विवरणों का विश्लेषण कर मानव इतिहास के अज्ञात तथ्यों को सामने रखा जिससे दूर-दराज के अछूते जन-जीवन के प्रति लोगों मे तीव्र जिज्ञासा जाग उठी। आंचलिक उपन्यास लोक-जिज्ञासा की पूर्ति के उद्‌देश्य से पूरी विश्वसनीयता के साथ लिखे जाने लगे। साहित्य में आंचलिकता का आग्रह समग्र ऐतिहासिक परिघटनाओं का परिणाम है।

प्रामाणिक रूप से किसी समाज के यथार्थ का चित्रण करने के प्रयासों में एक नई विशेषता साहित्य-जगत में यह आयी कि यथार्थवादी औपन्यासिक कृतियों के लिए बिल्कुल परिचित और अनुभूत सामाजिक परिवेश की आवश्यकता स्वीकार कर ली गई। इसी आग्रह से साहित्यिक कृतियों में आंचलिक तत्वों के प्रवेश का मार्ग बनता चला गया। क्रमशः आंचलिक तत्वों की अधिकता ने औपन्यासिक कृतियों में एक नये रूप का सृजन कर दिखाया जो आंचलिक उपन्यास के नाम से जाना गया। आंचलिक उपन्यासें का विकास पाश्चात्य और भारतीय दोनों साहित्य जगत् में दिखाई देता है। आंचलिक उपन्यासें को इसके तत्वों कें आधार पर परिभाषित करने का प्रयास भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों नें की है।

भारतीय दृष्टिकोण

श्री शिव प्रसाद सिंह नें 'अंचल' शब्द व अर्थ की सही सीमाएँ

स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''जैसा इस शब्द से स्पष्ट है कि यह भाव संज्ञा किसी क्षेत्र या अंचल से सम्बद्ध है। क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खण्ड को कहते है जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सव आदि आदर्श और आस्थाएँ मौलिक मान्यता तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परंपरा समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हों कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल-विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के क्षेत्र या अंचल के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचना को हम आंचलिक कह सकते हैं।''[१]

डॉ. रामदरश मिश्र ने इसे अंचल और जनपद के जीवन से सम्बन्धित माना है, "आंचलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है, उसका सम्बन्ध जनपद से होता है ऐसा नहीं, वह जनपद की ही कथा है।"[२] इनके विचार से आंचलिक उपन्यासों में अंचल अपनी सम्पूर्णता, विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अंचल के जीवन की सारी परंपराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों-अशक्तियों, छवियों-अछवियों को जितनी ही अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ सकेगा, अंचल-जीवन के चित्रण में उतना ही सफल होगा---।"[3]

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के भाव आंचलिक उपन्यास को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं- ''आंचलिक शब्द का प्रयोग एक सीमित और किसी हद तक पारिभाषिक अर्थ में किया जाता है। आंचलिक उपन्यास हम उसे कहते है जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के जन-जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण हो। आंचलिक उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता अपरिचित और किसी हद तक आदिम जातियों के जीवन में पाई जाती है।"[४]

श्री महेन्द्र चतुर्वेदी के अनुसार "अंचल शब्द भू-खण्ड-विशेष का वाचक है, जो सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, दृष्टिकोण से अपने आप में एक इकाई हो, जिसके जीवन की कुछ अपनी विशेषताएँ हों।"[५]

---

१. श्री शिवप्रसाद सिंह, ''आंचलिकता और आधुनिक परिवेश, कल्पना'' मार्च-१९६५ पृष्ठ-२९
२. डॉ. रामदरश मिश्र, ''हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा'' पृष्ठ-१८८
३. वही, पृष्ठ-१८८
४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, 'सारिका' मासिक, अक्टूबर-१९६१
५. श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, ''हिन्दी उपन्यासः एक सर्वेक्षण'' पृष्ठ-१८९

श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव कहतें है कि, "मेरे विचार से वहीं आंचलिक उपन्यास अधिक सफल सिद्ध हो सकता है जिसमें कथा बुनने के लिए किसी ऐसे अंचल को चुना गया हो जिसकी विशेषताओं से लोग कम परिचित हों।[१]

श्री प्रकाश वाजपेयी "एक सीमित अंचल या क्षेत्र के सर्वांगीण जीवन को वस्तुन्मुखी दृष्टि से प्रस्तुत करने के उपक्रम"[२] को आंचलिक उपन्यास की उपयुक्त परिभाषा कहते हैं।

डॉ. धनंजय वर्मा के विचार से "उपन्यास में लोक-रंगों को उभार कर किसी अंचल-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहा जायेगा।"[३]

श्री देवराज उपाध्याय ने आंचलिक उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है, "आंचलिक उपन्यास में लेखक देश के एक विशिष्ट भाग पर बल देता है और वहां के जीवन का इस प्रकार निरूपण करता है कि पाठकों को उसके अनोखे गुणों, विशिष्ट प्रवृत्तियों और असामान्य रीति-रीवाजों तथा जीवन की प्रणाली का ज्ञान हों जाय।"[४]

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने आंचलिक उपन्यास की परिभाषा किंचित विस्तार से दी है, "हम यों कह सकते है कि, जिन उपन्यासों में स्थान-विशेष के संम्पूर्ण वातावरण का सांग - संश्लिष्ट और निष्कपट रूप से स्थानीय विशेषताओं के साथ चित्र प्रस्तुत किया जाय उन्हें आंचलिक

---

१. श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव, 'हिन्दी उपन्यास में नए प्रयोग, आलोचना' १७ जनवरी-१९५६
२. श्री प्रकाश वाजपेयी, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' पृष्ठ-६
३. डॉ. धनंजय वर्मा, आलोचना, अक्टूबर-१९५७
४. "In a regional novel the writer concentrates on a particular part of a conuntry and depicts its life in such a way as to bring about a consciousness among the readers of its unique characteirstics, distinguishing features and particular customs and patterns of life" Devraj Upadhyaya. " Recent Tendencies in Hindi fiction" Hindi Review Magazine ( May - 1956 ), Page - 27.)

उपन्यास कहेगें।"[1]

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में "आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहते है जिनमें किसी विशेष जनपद, अंचल (क्षेत्र) के जन जीवन का समग्र चित्रण हो।"[2] एक अन्य स्थान पर उन्होंने अंचल के स्थान पर प्रदेश शब्द का ही प्रयोग किया है "परन्तु प्रदेश विशेष या जाति-विशेष को लेकर सामूहिक रूप में किसी प्रदेश या जाति का जीवन, जहां समग्र रूप में यथावत पूरे विवरण के साथ हो तो उसे आंचलिक उपन्यास कहते है।"[3]

पंण्डित राजनाथ पाण्डेय ने "प्रत्येक भूमि-भाग की मिट्‌टी की खास महक, उसमें पनपने वाली वनस्पत्तियों, पत्तों व फूलों में एक विशेष गन्ध तथा उसीके अनुरूप वहां के समस्त जीवों तथा मानवों में एक भिन्न मन: स्थिति, जो अन्य भू-भागों की इन विशेषताओं से भिन्न विशिष्टता रखती है, को आंचलिकता स्वीकार किया है। यह गंध वहाँ के निवासियों की भाषा आचार-विचार तथा मानसिकता में प्रतिबिम्बित होती हैं।."[4]

श्री कान्ति वर्मा के अनुसार "आंचलिक उपान्यासों में किसी-विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जीवन, रहन-सहन, रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, लोक-गीत, उत्सव इत्यादि स्थानीय विशिष्टताओं के विकास और उन परिस्थितियों का जो युग चेतना का प्रतिनिधित्व करती है, चित्रण किया जाता है।"[5]

डॉ. आदर्श सक्सेना ने "एक ऐसी बोली, व्यवहार, रहन-सहन, संस्कार, लोक-गीतों, लोक-कथाओं एवं समस्याओं से ग्रस्त, एक-सी

---

१. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत- 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त' (द्वितीय भाग) पृष्ठ-४३३

२. श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 'पिछले दशक की देन, आंचलिक उपन्यास,' साहित्य-संदेश जनवरी-फरवरी-१९५८),पृष्ठ-३६१

३. श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय 'हिन्दी के कुछ नए यथार्थवादी उपन्यास,' साहित्य-सन्देश (उपन्यास अंक-१९५६), पृष्ठ-२४

४. पं. राजनाथ पाण्डेय, 'पूर्णिमा' (अप्रेल-१९६०), पृष्ठ-६

५. कान्ति वर्मा, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ-१८४

जीवन-व्यवस्था सें बंधे, पर्वत-श्रृंखला के सहारे, नदी कूल पर स्थित, सागर तट पर फैले ग्रामों को अंचल की संज्ञा से अभिहित किया है।"[१]

पाश्चात्य दृष्टिकोण

अंग्रेजी उपन्यास साहित्य के विद्वान लेखक वॉल्टर एलन ने मारिया एजवर्थ के आंचलिक उपन्यास 'कॉसल रेकरेंट' (castel Reckrent) का उल्लेख करते हुए आंचलिक उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार की है- "जिस उपन्यास में पात्रों का समग्र जीवन उस अंचल से प्रभावित होता है तथा जिसमें अंचल अपनी परम्पराओं के कारण अन्य अंचलों से भिन्न प्रतीत होता है वह आंचलिक उपन्यास है।''[२]

फिलिज बेंटले की आंचलिक उपन्यास सम्बन्धी परिभाषा वॉल्टर ऐलन से मिलती जुलती हैं। उनकी दृष्टि में ''एक विशेष भाग या अंचल विशेष में रहने वाले निवासियों के जीवन का जीवन्त चित्रण अंचल का परिचायक होता हैं।''[3]

'द आक्सकाफोर्ड कम्पेनियन टू अमेरिकन लिटरेचर' में आंचलिक उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसकी प्रवृत्ति पर व्यापक रूप में विचार किया गया है।[४] यह परिभाषा आधुनिक आंचलिकता की प्रवृत्तिकी दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। 'द अमेरिकन कॉलेज इनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी में 'रीजन'

---

१. डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि', पृष्ठ-२१

२. "She (Maria Edge worth) invented, in other words, the regional novel in which the earg nature of the novelists characters is conditioned received its bias and expression, from the fact that they live in a country side, differentiated by traditional way of life from other country sides" -Walter Allen : Page - 103 ' The English Novel ' Reprinted - 1965, Pelican Book ( Penguin )

३. "The regional novel is the national novel carried to one degree further of sub-division. It is a novel which concentrating on a particular part, a particular region of a nation, dipicts the life of that region in such a way that the reader is conscious of that charactarestics from others in that common mother land."
- Bentley, Page - 7 " The English Regional Novel "

४. "The term applied to literature which emphasizes a special geograpical setting and concentrates upon the history mamers and folk ways of the

का अर्थ "शहर या राज्य का एक प्रशासनिक विभाग"[१] दिया गया है।

'द आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' के अनुसार 'रीजन' या 'प्रदेश' अपने प्राचीन अर्थ में राज्य के लिये प्रयुक्त होता था, परन्तु अब उसका अर्थ है- भूमि का एक बड़ा टुकड़ा, देश व किसी सीमा तक पारिभाषिक पृथ्वी की सतह का भाग जो कुछ विशेष प्राकृतिक रूपों, जलवायु सम्बन्धी दशाओं, जीव, वनस्पति आदि के कारण विशिष्टता रखता है।[२].

'इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकन्स' में 'रीजन' शब्द का कुछ अधिक विस्तार के साथ स्पष्टी करण इस प्रकार मिलता है। "आंचलिकता से युक्त साहित्यिक आन्दोलन एक ऐसा माध्यम है जो अपने युगीन परिवेश की ऐतिहासिक संस्कृति, भूगोल, साहित्य तथा उससे सम्बद्ध निवासियों की पहचान कराता है।"[3].

जोसफ टी. शिप्ले के अनुसार 'किसी अंचल-विशेष के निवासियोंके जीवन एवं प्रगति को सविस्तार चित्रित करने वाली लेखकों की प्रवृत्ति आंचलिकता कहलाती है।'[४]

---

-areas as these help to shape the lives or behaviour of the characters. It generally differs from local colour in that it lays less stress upon quaint oddities of dialect mavnerisms and costume and more on basic philosophical or sociological distinction which the writer often views as though he were a cultural anthropologist." -The oxford Companion to american literature by James D. Hart : Page : 702

१. Region Any more or less extensive, continuous part of a surface or space ---, an addministrative division of a city or territory. -The American collage encyclopedic dictionary. Vol - VII. Page-1020

२. Region (a) A realm or kingdom, obe. (b) A large tract of land, a country,a more or less define portion of earthe's surface, Now esp. as distinguished by certain natural features, elimatic conditions, a special fauna or flora, or the like.- The oxford English Dictionary, Vol-VIII page - 371

३. The term regional literature applies to a variety of literacy works and movemets which acknowledge the shaping power of achievements on human fortunes and which try to reader with exactitude the unique quali ties that the geographical cultural history of given locality have imported to the lives of the inhabitants -The Encyclopedia Americans.Vol - XVII page - 572

४. " The tendency of some writers to set their works in a particular locality, presented in some detail or affecting the lives and fortunes of the inhabitants." - Dictionary of world Literary terms by Joseph. T. Shipley, Page - 337-338.

अमेरिकी लेखकों ने अंचल-विशेष को 'स्थानीय रंगत' के प्रयोग से अलग आधुनिक आंचलिकता के अर्थ में प्रयुक्त किया अर्थात् किसी स्थान, काल, संस्कृति या संस्कार के लोगों का प्रयोग व्यक्तित्व के निरूपण तथा जीवनके सर्वमान्य सत्य की अभिव्यक्ति के लिये करके भौगोलिक या सांस्कृतिक सीमाबद्ध खास क्षेत्र के सामान्य-जीवन के सत्यों का अन्तर या एकरूपता उद्घाटित करने में।'[१]एक अन्य अमेरिकन समीक्षक ने आंचलिकता की परिभाषा देते हुए उसमें चरित्र-चित्रण एवं भौगोलिक परिस्थिति या प्राकृतिक वातावरण के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित किया है जो आंचलिकता का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।'[२]

विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए आंचलिक उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- 'आंचलिक उपन्यास में प्रयुक्त अंचल के प्राकृतिक परिवेश, रीति-रिवाज, रूढ़ि, अन्ध-विश्वास, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा परम्परा-प्रथा, पर्व-त्योंहार, बोली-भाषा, गीत-संगीत और नृत्य आदि का सांगोपांग चित्रण किया जाता है, जिससे उस अंचल का प्रामाणिक परिचय हमारे सामने प्रस्तुत होता है।'

उपर्युक्त भारतीय और पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा दिए गए आंचलिकता की परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आंचलिक उपन्यासकार सांस्कृतिक एवं मानवशास्त्रीय दृष्टि से जन-जीवन का चित्रण करता है। वह एक समाजशास्त्रज्ञ होता है। अत: इन सभी परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए आंचलिकता के लक्षणों एवं विशेषताओं को निश्चित कर सकते हैं।

---

१. "--- In the United states the regional has become one of the most extensive fields of modern fiction, a medium for the observation and depiction of natural scene or human habitat, in fauna, flora topographical characteristics , folk backgrounds, customs, speech, influences of environment, tradition's and process of gorwth in all sections and many localities of the country--- many of the orient have novelists whose work,rooted in their own soil, hepls to compose in literature a mosaic of the comman life of man upon the earth." - what's in a novel .Helen E. Haines Page-67

२. " A quality in literature which the product of its fidelity to a partiucular geographical section, accurately representing its habits,speech manners, history, folklore or believes. In one sense the test of the regionalism is that the action and pessonages of a novel, short a story, a drama that is called regional can not be moved without major loss or distortion, to any other geographical setting." A hand book to literature by Thrall , Hibbard & Holman, Page : 406

## आंचलिकता के लक्षण एवं विशेषताएँ

किसी भी अंचल-विशेष की आंचलिकता को संरचना में अभिव्यक्त करने वाले कुछ लक्षण एवं विशेषताएँ होती हैं। वस्तुतः इन्हीं विशेषताओं के माध्यम से ही आंचलिकता अपने अर्थ को रूपाथित करते हैं और जब इन सभी विशेषताओं को उपन्यास में प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है तो वह उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहलाने लगता है तथा ये विशेषताएँ उसे सामान्य उपन्यासो से भिन्न एक नवीन रूप प्रदान करती है। विभिन्न विद्धानों द्वारा दिये गये उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर आंचलिकता की निम्नलिखित विशेषताएँ निश्चित की जा सकजी है...

१. किसी अंचल की विशेष भौगोलिक स्थिति,
२. लोक-संस्कृति का चित्रण,
३. अंचल की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का चित्रण,
४. जातीय भिन्नता में एकता के दर्शन,
५. स्थानीय समस्याओं का चित्रण,
६. सामूहिक चरित्र-चित्रण,
७. जन-जागरण की नई दिशा का संकेत,
८. लेखक का यथार्थवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण,
९. स्थानीय बोली और भाषा का सन्तुलित एवं स्वाभाविक प्रयोग,
१०.आंचलिकता का राष्ट्रव्यापी जीवन-यथार्थ से सम्बद्धता,
११.अंचल के जीवनानुभूतियों से उपन्यासकार का जुड़ाव,

### १. किसी अंचल की विशेष भौगोलिक स्थिति

उपन्यास साहित्य के सन्दर्भ में विश्लेषित आंचतिकता की सभी परिभाषाओं में विशेष भौगोलिक स्थिति, अविकसित अंचल-विशेष, विशेष भू-भाग, जनपद-विशेष, क्षेत्र-विशेष, प्रदेश-विशेष और प्रान्त आदि के विवेचन को स्वीकारा गया है । 'अंचल' का भौगोलिक विस्तार कम हो सकता है, किन्तु प्रकृति की गोद में स्थित ये अंचल जन-जीवन की गहराई को समेटे रहते हैं। इन अंचलो की भौगोलिक स्थिति के अनुसार ये पर्वतीय भाग हो सकते हैं या पहाड़ी की तलहटी में स्थिति भू-भाग हो सकते हैं अथवा घाटी में, नदी में, घने वीहड़ वनों में, सागर की लहरों से टकराते किनारों पर भी स्थित हो सकते हैं। इन अंचलों का जीवन कुछ

स्थिर, बँधा हुआ या अपरिवर्तनशील रहता है, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि ऐसे दूरस्थ अंचलो का जीवन जड़ होता है। वास्तवमें इन अंचलों की भौगोलिक विचित्रताएँ होती है जो वहां के जन-जीवन को बांधे रहती हैं। अंचल-विशेष का इस प्रकार का भौगोलिक वातावरण अपने अनोखेपन के कारण अन्य भू-भागों से भिन्नता रखता है और प्रत्येक अंचल की भौगोलिक स्थिति ही वहां के जन-जीवन को भौगोलिक परिवेश प्रदान करती है जिसमें वहां के निवासी अपने जीवन को अभिव्यक्त करते हैं।

२. लोक-संस्कृति का चित्रण

आंचलिक उपन्यास में अंचल के समग्र लोक जीवन का चित्रण किया जाता है। यहां प्राचीन काल से ही 'लोक' शब्द का अर्थ जनता और इस दृश्य जगत् से लिया जाता रहा है। आंचलिकता के अर्थ-बोध हेतु 'लोक' शब्द के साथ-साथ 'संस्कृति' की भी व्याख्या अभिसिप्त है। इसके अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो ग्रामीण परिसरों में एवं तथाकथित सभ्य-शिष्ट, सुसंस्कृत लोगों से दूर रहते हैं और जिनकी अपनी विशिष्ट परम्पराएँ होती हैं। इसका लक्ष्य किसी भू-भाग के जन-समुदाय के प्राकृतिक जीवन का अंकन करना होता है, अत: लोक-संस्कृति के माध्यम से ही लोक-जीवन की यथार्थ भाव-गरिमा का उद्‌घाटन किया जाता है। इन उपन्यासों में जन-जीवनकी स्वाभाविक सार्वत्रिक गतिविधि का अंकन 'लोक-संस्कृति' के अंतर्गत माना जाता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिये लोक-गीत, लोक-कथा, लोकाचार, लोक-भाषा आदि लोक-जीवन के अभिन्न तत्वों को उपन्यासकार अपनी रचना में ग्रहण करता है।

३. अंचल की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का चित्रण

अंचल के सर्वांगीण चित्रण की सजीवता के लिए उसकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति का आलेखन आवश्यक है। समाज, परिवार, वर्ण और सामाजिक विषमताओं के साथ-साथ भोजन, आवास, व्यवसाय, वाणिज्य इत्यादि का चित्रण आंचलिक उपन्यास में कम महत्वपूर्ण नहीं होता। राजनीतिक जागृति, विविध पार्टियाँ, शासन व्यवस्था आदि के द्वारा अंचल के राजनीतिक वातावरण को प्रस्तुत किया जाता है। इन सभी स्थितियों का प्रभाव पात्र एवं जन-जीवन पर पड़ता है और इन्हीं के मध्य कथा विकसित

होती है।

४. जातीय भिन्नता में एकता के दर्शन

भारत की भौगोलिक एवं प्राकृतिक भिन्नता उत्तर से दक्षिण तक जितनें रूपों में फैली है, उतनी ही उसकी जातीय भिन्नता भी प्रसरित है। किसी एक भू-खण्ड के लोगों के जीवन का रहन-सहन, मान्यताएँ आदि किसी दूसरे अंचल से पूर्णतया पृथक होते हैं, फिर भी आवागमन से दूर बसे हुए इन अंचलो अथवा जनपदों में एक-सा जातीय अथवा वर्गगत जीवन होता है, अतः विविध अंचलों के जन-समुदाय की चेतना में एकता के दर्शन होते हैं। अंचल में जातीय भिन्नता होते हुए भी सम्पूर्ण अंचल की एकता की इकाई आंचलिक उपन्यास में व्यंजित होती है।

५. स्थानीय समस्याओं का चित्रण

अंचल नगरीय सभ्यता से दूर विशेष भू-खण्डों के वे हिस्से होते हैं जहाँ आसानी से लोगों की पहुँच नहीं हो पाती और उनमें बसे हुए लोग अलग-थलग पड़ जाते हैं। अतः ऐसे भू-खण्डों की अपनी परिस्थितियाँ होती है और उन्हीं परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप आंचलिक समस्यायें उद्भूत होती हैं। ऐसे अंचलो में बसे हुए सभी निवासी इन स्थानीय समस्याओं से अनुप्राणित रहते है। उनका सम्पूर्ण जीवन इन समस्याओं से जूझने में ही बीत जाता है।

६. सामूहिक चरित्र-चित्रण

आंचलिक उपन्यास में लेखक की दृष्टि सामूहिक चरित्र-चित्रण की ओर रहती है, दूसरे शब्दों में अंचल ही नायक बन जाता है। पात्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के समान उस प्रदेश या क्षेत्र का भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व या स्वभाव होता है जो पात्रों के सामूहिक चरित्र-चित्रण के द्वारा अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक पात्र अपनी विशेषताओं के कारण उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार वह अंचल ही महत्वपूर्ण बन जाता है।

७. जन-जागरण की नई दिशा का संकेत

अंचल की जनता में उत्पन्न होने वाली नवीन जागृति का स्पष्ट एवं सशक्त अंकन आंचलिक उपन्यास में होता है। स्वाधीनता संग्राम और स्वातंत्र्योत्तर

चेतना की नूतन गतिविधियों से अंचल का जीवन अलिप्त नहीं रह सका, फलतः असहयोग, अहिंसा, सत्याग्रह आदि के प्रभाव ने अंचल के जीवन में महत्वपूर्ण क्रान्ति पैदा की है। आंचलिक जीवन की समस्याओं के लिए समूह का नेतृत्व स्वीकार करना, पंचायतों की स्थापना, शिक्षा-संस्थाओं का आयोजन,पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा, चुनाव अधिकारों के प्रति जागृति आदि जन-जागरण की दिशाओं का संकेत आंचलिक उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

८. लेखक का यथार्थवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

अंचल के निवासियों और उनके व्यक्तित्व के विकास आदि में अंचल के प्रभावों को स्पष्ट करने के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण आवश्यक है। आदि रचनाकार कल्पना के अतिरेक से अंचल का चित्रण करेगा तो वह अंचल का वस्तून्मुखी विवरण नहीं होगा। आंचलिक उपन्यास में व्यापक सामाजिक सन्दर्भ का यथार्थ और साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है। वस्तुतः आंचलिक उपन्यास में भी अन्ततः 'मानव-सत्य' का ही अन्वेषण तथा दर्शन करने-कराने का प्रयास होता है। यह विशेषता आधुनिक औपन्यासिक रचना की विशेषता है।

९. स्थानीय बोली और भाषा का संतुलित एवं स्वाभाविक प्रयोग

किसी विशिष्ट भू-भाग के निवासियों आदि का वास्तविक अंकन करने के लिए उसी क्षेत्र-विशेष की बोली, शब्दों, मुहावरों आदि का मुक्त प्रयोग प्रायः आंचलिक उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तत्व है। स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रानुसार भाषा का विधान संवाद योजना में किया जाता है। कहीं-कहीं भाषा की दुरूहता सहज-भाव में विघ्न उत्पन्न करती है। ध्वन्यात्मक अनुकरण, शब्द, अर्धवाक्य, दृश्य-विधान आदि अनेक शैलीगत विशेषताओं में आंचलिक स्पर्श पाया जाता है। वस्तुतः सन्तुलित भाषा प्रयोग आंचलिक उपन्यास का एक सफल तत्व है। इस विशेषता का प्रयोग कृति को प्रामाणिकता प्रदान करता है। अधिकांश लेखक इसका प्रयोग आंचलिक आग्रह के लिए करते है।

आंचलिक उपन्यास एक साहित्यिक कृति होता है। इसमें विवरण के अतिरिक्त संवेगात्मक विशेषताएँ भी होती है, साथ ही आस्वादन या प्रभाव का स्थान भी महत्वपूर्ण होता है। इस दृष्टि से रचना प्रक्रिया और प्रभाव की दृष्टि से आंचलिक उपन्यास की दो और विशेषताएँ सामने आती हैं-

## १०. आंचलिकता का राष्ट्रव्यापी जीवन-यथार्थ से सम्बद्धता

इसके बावजूद कि आंचलिक उपन्यास एक अंचल को अपना केन्द्र बनाता है फिर भी उसका प्रभाव राष्ट्र-जीवन से अलग नहीं होता। आंचलिक उपन्यास अपने आस्वाद या प्रभाव में अंचल तक सीमित न होकर विश्वमानस को प्रभावित करता है। विवेकी राय 'सोनामाटी' उपन्यास के "दो शब्द" में लिखते हैं- "यह संघर्ष किस सीमा तक एक अंचल का है और कहां तक वह व्यापक राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ से जुड़ा है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकता है।"[1] इस कथन से आंचलिकता की सार्वभौमिकता प्रकट होती है।

## ११. अंचल के जीवनानुभूतियों से उपन्यासकार का जुड़ाव

किसी रचनात्मक कृति के लिए आवश्यक है कि रचनाकार का कृति के कथ्य से गहराई तक जुड़ाव हो। डॉ. रामदरश मिश्र ने आंचलिक उपन्यास की परिभाषा देते हुए इस अनिवार्यता की ओर संकेत किया है। उन्होंने लिखा है कि "आंचलिक उपन्यास लिखना मानों हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है।"[2]

आंचलिक उपन्यास की इस विशेषता के अभाव में केवल विवरण और तथ्यों का कथात्मक चित्रण करके कोई लेखकीय कृति रचनात्मक साहित्यिक कृति होने का दावा नहीं कर सकती। इसलिये शानी ने अपनी कृति 'शाल वनों का द्वीप' के विषय में उपन्यास के "दो शब्द" में लिखा है कि "शाल वनों का द्वीप" उपन्यास नहीं है। यात्रा वर्णन भी इसे आप नहीं कह सकते। मध्य प्रदेश के बस्तर, बस्तर के घोर आदि जातीय भू-भाग अबूझमाड़ और अबूझमाड़ के ओरछा नामक एक छोटे से गांव के सामाजिक जीवन और उसके यथार्थ का यह एक कथ्यात्मक विवरण है।"डॉ. रामदरश मिश्र के विचारों की सहमति शानी के इस कथन में देखा जा सकता है- "शायद इस वर्ग का सच्चा उपन्यास तभी लिखा जायेगा जब इन्हीं में से कोई लेखक उभरकर आएगा और अपनी तथा अपने वर्ग की प्रमाणिक अनुभूतियों को आकार दे सकेगा।"[3] स्पष्ट है शानी ओरछा के आदिम

---

१. विवेकी राय: 'सोना माटी'

२. डॉ. रामदरश मिश्र: 'सप्तसिन्धु', फरवरी-१९६४

३. शानी: 'शाल वनों का द्वीप'

जन-जातियों के जीवनानुभूतियों से नहीं जुड़े हुए हैं और न जुड़ सकते है, इसलिए उन्होंनें " इन्हीं में से" किसी लेखक के उभर आने पर सच्चे उपन्यास के लिखे जाने की संभावना व्यक्त करते है।

उद्धृत उदाहरणों में तीन प्रकार की परिभाषाएँ सामने आती हैं जिसमें सबसे अधिक परिभाषा, विवरण और तथ्य के आधार पर आंचलिक उपन्यास की विशेषताएँ बताती हैं। इन्हें विवरणात्मक विशेषताएँ कहीं जा सकती है। दूसरी विशेषता प्रभाव या आस्वादन की दृष्टि से प्रकट होती है। ऐसी परिभाषा रचनाकार विद्वानो द्वारा दी गई है। इन्हीं के द्वारा रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी विशेषता का भी उल्लेख हुआ है। विवरण, प्रभाव और रचना-प्रक्रिया की दृष्टियों से संकलित विशेषताएँ आंचलिक उपन्यास की निजी पहचान बनाने में सहयोगी सिद्ध हुई हैं।

## अंचल से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएँ

### कथा-क्षेत्र

' अंचल' शब्द की अर्थ-व्याप्ति को लेकर जिस प्रकार आंचलिक उपन्यास की परिभाषा और हिन्दी के प्रथम आंचलिक उपन्यासकार के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, उसी प्रकार आंचलिक उपन्यास का कथा-क्षेत्र भी हमारे यहाँ विवाद का विषय रहा है। इस विवाद का सूत्रपात आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के इस प्रश्नोत्तर से होता है कि "क्या आंचलिक उपन्यासों में अपरिचित देशों, जातियों और आदिम जीवन का ही चित्र अपेक्षित होता है, या उसमें नागरिक जीवन के विशेष-अंचल के चित्र भी रह सकते हैं?" स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए वे लिखते है-"नागरिक जीवन के चित्र तो क्रमागत सामाजिक उपन्यासों में रहते ही हैं, यदि आंचलिक उपन्यासों में वहीं वस्तु रखी जायेगी तो इस नई उपन्यास विधा की विशेषता क्या होगी; प्रश्न विधा का नहीं, परम्परा का भी है। आंचलिक उपन्यास वस्तुत: सामाजिक उपन्यासों की प्रतिक्रिया में, बल्कि विद्रोह में निर्मित हुए हैं। जब सामाजिक उपन्यास में नागरिक जीवन को चित्रित करते-करते उपन्यासकार थक गये और जब पाठकों का समुदाय उन घिसे-पिटे और अंशत: रूढ़ नागरिक चित्रणों से ऊब उठा, तब नए अज्ञात जीवन और दूरवर्ती प्रदेशों के अपरिचित क्षेत्रों से सम्बन्धित उपन्यास लिखे गये। इसलिये ये उपन्यास विशेष सामान्य नागरिक जीवन या नागरिक

जीवन की प्रतिच्छवि नहीं बनना चाहते।''[१]

इस तरह आचार्य जी ने नागरिक जीवन को लेकर चलने वाले उपन्यासों को सामाजिक कहा है और आंचलिक उपन्यासों की विषय-वस्तु का सम्बन्ध उन्होंने 'नए अज्ञात जीवन' और दूरवर्ती प्रदेशों के अपरिचित क्षेत्रों को बताया है। एक अन्य स्थल पर भी इसके सम्बन्ध में अपना स्पष्ट अभिमत व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है कि नागरिक चित्रण वाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता, उनके अनुसार- ''उपन्यास के ऐतिहासिक विकास को देखते हुए और आंचलिक उपन्यास के सीमित और पारिभाषिक अर्थ का ध्यान रखते हुए नगर से सम्बन्धित उपन्यासों को आंचलिक नहीं कहा जा सकता। वह वैचित्र्य, वह स्वच्छन्द व्यवहार, सभ्यता के दोषें से रहित वह आदिम मानव-प्रकृति जो आंचलिक उपन्यासों की केन्द्र-वस्तु है, नागरिक चित्रण में नहीं आ सकती।''[२]

इसके बाद इस विषय को लेकर विद्धान लोग दो वर्गो में विभक्त होते गए। इसमें एक वर्ग ने केवल ग्राम अंचल को अपनाकर चलने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक उपन्यास के रूप में स्वीकार किया और दूसरे ने नागरिक क्षेत्रो से सम्बन्धित उपन्यासों को भी इस कोटि में सम्मिलित कर लेने में कोई हानि नहीं देखी। उनकी राय में इसका क्षेत्र ''एक देहात हो सकता है, एक भारी शहर का एक मोहल्ला भी और इन सबसे दूर सघन वनों की उपत्यकाएँ भी।''[3]

डॉ. शिव प्रसाद सिंह आंचलिक कथा और ग्राम-कथा का भेद स्पष्ट करते हुए 'अंचल' को ग्राम-जीवन तक ही सीमित रखने के पक्ष में हैं और आंचलिक कथा को ग्राम-कथा का एक हिस्सा मानते हैं।[४] श्री ब्रजविलास शर्मा ने भी 'अंचल' का अर्थ 'ग्राम जीवन' तक सीमित करते हुए लिखा है-''मेरे विचार से वह आंचलिक उपन्यास अधिक सफल हो सकता है, जिसमें कथा बुनने के लिए किसी अंचल को चुना गया हो, जिसकी विशेषताओं से लोग कम परिचित हों। साथ ही उपन्यासकार का

---

१. प्रकाश वाजपेयी, 'हिन्दी कें आंचलिक उपन्यास' की भूमिका से।

२. नन्द दुलारे वाजपेयी, 'सारिका' मासिक, अक्टूबर-१९६१

३. राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित, 'सारिका' मासिक, अक्टूबर-१९६१

४. श्री शिव प्रसाद सिंह, 'आंचलिकता और आधुनिक परिवेश, 'कल्पना', मार्च-१९६५

उस प्रदेश के लोक-जीवन से घनिष्ट परिचय भी आवश्यक है।"[1] डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त भी इसी मत के है कि, "आंचलिकता में नगर की खींचतान व्यर्थ हैं। आंचलिक जीवन मुख्यतः ग्रामीण ही होता है और आंचलिक उपन्यास इस स्थानीय यथार्थ की सघनता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर प्रस्तुत हुए हैं।"[2] डॉ. आदर्श सक्सेना[3] ने भी ग्राम्य-अंचल पर लिखे हुए उपन्यासों को ही सफल माना है, इसलिए कि ग्राम्य-अंचल में प्रमुख रूप से असभ्य और पिछड़े हुए लोगों का निवास होता है। इस तथा-कथित असभ्य और पिछड़े हुए लोगों के जीवन में नैसर्गिक प्राण-शक्ति का बाहुल्य होता है। नागरिक जीवन की कृत्रिमता की तुलना में यह जीवन स्वच्छन्द, ग्रन्थि-विहीन और सशक्त होता है।---कहने को शहरी परिवेश को भले ही अंचल कह दिया जाये, परन्तु उसमें वह पवित्रता, लालसा एवं प्रेम उपलब्ध नहीं होता जो वस्तुतः ग्राम अंचल की ही विशेषता है। "डॉ. रामदरश मिश्र का झुकाव भी इसी ओर लगता है कि 'जनपदीय जीवन ही आंचलिक उपन्यास का कथा-क्षेत्र होना चाहिए।'[4]

कथा-शिल्पी राजेन्द्र अवस्थी, श्री महेन्द्र चतुर्वेदी तथा कुछ अन्य विद्वानों के मतों में भी एक प्रकार का दोहरापन है। सन् १९६१ ई. में जब राजेन्द्र अवस्थी 'सारिका' के सम्पादक थे तब उन्होंने आंचलिक उपन्यासों को लेकर एक परिसंवाद का आयोजन किया था। उसी अवसर पर उन्होंने कहा था कि "इधर-आंचलिक शब्द से एक नया भ्रम पैदा हो रहा है, कदाचित् यह समझा जाने लगा है कि आंचलिक उपन्यास वहीं है, जो केवल ग्रामीण जीवन पर आधारित हो और वहां की संस्कृति का चित्रण करे। इस तरह का विचार निराधार नहीं है। इसी बीच हिन्दी में जो कुछ लिखा गया है उसमें अधिकांश कथाकारों ने ग्रामों को ही अपनी लेखनी का सम्बल बनाया है। नागरी जीवन को लेकर कुछ छुट-पुट प्रयत्न हुए है पर उनमें विशेष सफलता नहीं मिल पाई। वास्तविकता यह है कि अंचल

---

१. श्री ब्रजविलाश शर्मा, 'हिन्दी उपन्यासों में नए प्रयोग,' अलोचना, जनवरी-१९५६, पृष्ठ-४६

२. डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त, 'आंचलिक उपन्यासः संवेदना और शिल्प', पृष्ठ-१३.

३. डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि', पृष्ठ-२७-२८.

४. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा,' पृष्ठ-१८८.

एक देहात हो सकता है, एक भारी शहर भी, शहर का एक मोहल्ला भी और इन सबसे दूर सघन वनों की उपत्यकाएँ भी।'' यहां राजेन्द्र अवस्थी अंचल की सीमाओं को व्यापक रूप में ले रहें हैं और नागरी जीवन को लेकर लिखे गये आंचलिक उपन्यासों की हिमायत कर रहे है। परन्तु सन् १९६३ ई. में जाकर वे एकाएक अपने ही कथन का विरोध करते है और 'शहरी संस्कृति' को नकली घोषित करते हुए कहते हैं, ''हमारे देश के विभिन्न अंचल ही हमारी संस्कृति के प्रतीक है। शहरों ने हमारी संस्कृति को कभी प्रभावित नहीं किया और न उनके बल-बूते पर एक विराट सांस्कृतिक धारा बन पाई। हाँ, गांवो की सहज और उन्मुक्त प्रवृत्तियों की भौड़ी नकल अवश्य ही शहरों में हुई, लेकिन उससे सांस्कृतिक विकास की दिशा में किसी तरह का बल नहीं मिल सका--- शहर नकली संस्कृति के केन्द्र हो सकते हैं, संस्कृतियों का उद्‌गम वहां नहीं होता है। इसलिए ये आंचलिक उपन्यास हमारे सांस्कृतिक उपादान है और यदि विभिन्न अंचलों पर किसी तरह का सामूहिक प्रयास किया जाये, तो उससे हमारी बिखरी संस्कृति का एकीकण और उनमें उबलब्ध समान तत्वों, समान विचारों और समान प्रश्नों को खोजा जा सकता हे जो किसी भी स्वाधीन देश की अमानत हो सकते है।''[१] यहां वे ग्रामांचल की कथा कहने वाले आंचलिक उपन्यासों को सांस्कृतिक उपादान के रुप में स्वीकार कर रहे हैं। इस तरह राजेन्द्र अवस्थी के विचारों में एक तरह की उलझन और अनिश्चयात्मकता प्रकट होती है।

कुछ इसी तरह का विचार महेन्द्र चतुर्वेदी का भी लगता है। उनके अनुसार ''आंचलिक उपन्यास की वर्ण्य-वस्तु विशुद्ध रूप से ग्रामीण हो यह अनिवार्य नहीं है, किसी उप नगर को भी कथा-क्षेत्र के रूप में ग्रहण किया जा सकता है- यह भी हो सकता है कि कथांचल का एक रुख गांव की ओर हो और दूसरा शहर की। हिन्दी में पहले प्रकार का उदाहरण 'सागर लहरें और मनुष्य है ओर दूसरे प्रकार का 'बया का घोंसला और सांप' है। किन्तु फिर भी ये कृतियां अपवाद स्वरूप ही हैं। आंचलिक उपन्यास की भावी समृद्धियों की ओर इंगित करने वाली कृतियां वे ही हैं जिन्होंने गांव को कथाधार के रुप में ग्रहण किया है।[२]

---

१. श्री राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित', कहानी आज की, 'गंधदीप,' १९६३, पृष्ठ-२४६
२. श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, 'हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण' पृ-२०७-२०८

श्री हीराप्रसाद त्रिपाठी भी 'आंचलिक उपन्यास' का कथांचल गांव ही हो, यह अनिवार्य नहीं मानतें है। वे मानते है कि, किसी बड़े शहर के 'सबर्ब' को अपना कथा-क्षेत्र बनाने वाले उपन्यास भी आंचलिक हो सकते है। पर इसके साथ ही वे यह भी मानकर चल रहे है कि ''हिन्दी आंचलिक जीवन पर आधारित कला का व्यापक तथा संभावनापूर्ण रूप हमें ऐसे उपन्यासों में ही मिलता है जो विशुद्ध रूप से ग्रामीण है।''[१]

डॉ. कान्ति वर्मा का मत ही एक ऐसा मत है जिसमें किसी भी ओर झुकाव न होकर, ग्राम एवं नगर दोनों को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यासों को 'आंचलिक उपन्यास' स्वीकार किया गया है। उनके अनुसार ''आंचलिक शब्द का तात्विक अर्थ यह नहीं है कि केवल ग्रामीण कथाएँ ही इसके क्षेत्र में आएँ बल्कि किसी छोटे शहर की विशेषता को उभारने वाला साहित्य भी आंचलिकता की सीमा में आ जाता है। हिन्दी में कितने ही उपन्यास इस प्रकार के लिखे गये है जिनमें छोटे-शहरों की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों का चित्रण हुआ है और उनमें आंचलिकता के अन्य सब तत्व भी पाये जाते है।''[२]

मेरे विचार से शहर की अपेक्षा ग्राम अंचल का चित्रण करने वाले उपन्यास अधिक सजीव एवं सफल होते हैं। इसका एक कारण यह है कि शहरों में प्रकृति जीवन-निर्वाह का साधन नहीं होती। वहां प्रकृति मनोरंजन की वस्तु समझी जाती है, अतएव मनुष्यों के रागात्मक सम्बन्ध प्रकृति के साथ स्थापित नहीं हो पाते। साथ ही विभिन्न शहरों की परिस्थितियाँ, रहन-सहन और भाषा एक जैसी होती है। दूसरा यह कि, औद्योगिकी करण के कारण किसी भी बड़ें नगर या महानगरों में एक ही अंचल की विशेषताएँ नहीं होती है, वहाँ तो 'बहु-अंचलीय' विशेषताएँ होती है। 'सबर्ब' की भी यही स्थिति है। इसके विपरीत ग्रामों में प्रकृति मानव-जीवन की सहचरी है। वह विविध अनुभूतियों में हमारे साथ संयुक्त रूप से विद्यमान रहती है। इसी कारण अंचल-विशेष के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन सम्बन्धों को सजीव रूप से चित्रांकित करने में ग्रामांचल

---

१. श्री हीरा प्रसाद त्रिपाठी, 'आंचलिक उपन्यास,ग्रामीण मध्यम वर्ग, 'कल्पना', मई-१९५८, पृष्ठ-५६

२. डॉ. कान्ति वर्मा, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ-१८४

विशेष रूप से सहायक होते है। आंचलिक जीवन का कलात्मक एवं विकसित रूप उन उपन्यासों में ही प्राप्त होता है जो ग्राम जीवन पर आधारित है। ग्रामों में प्राण-शक्ति अपनी सम्पूर्णता के साथ विद्यमान रहती है। ग्राम-जीवन अधिक स्वच्छन्द एव सशक्त होता है। शहरी सभ्यता में कृत्रिमता एवं विकृति का समावेश होता है। अत: हम अपने शोध-प्रबन्ध में उन्हीं कृतियों को स्थान देंगे जिनमें ग्रामांचल का अंकन हो।

## आंचलिकता और स्थानीय रंग

स्थानीय रंगत प्राय: सभी उपन्यासों में होती है। आंचलिकता का बोध अपने आप में एक नवीन अभिव्यक्ति है। आंचलिकता को औपन्यासिक दृष्टि से 'लेखक की अपनी कृति को अंचल-विशेष की आधारभूमि पर निर्मित करने तथा वहां के निवासियों के जीवन और प्रगति को विस्तार के साथ चित्रित करने की प्रवृत्ति भी कह सकते हैं।'[1] प्रत्येक अंचल की भौगोलिक स्थिति एक दूसरे से भिन्न होती है और उसमें विकसित होने वाले मानव-जीवन की साधना का काल, धर्म-जाति और इतिहास भिन्न है। उसकी अपनी आर्थिक स्थितियाँ होती है जिनमें अंचल का व्यक्तित्व बनता उभरता है और साथ ही अपनी विशिष्टिता बनाता है। आंचलिकता का आग्रह 'अंचल' या वह बस्ती है जहां यह सारा जीवन बनता-बिगड़ता है। यहां प्रमुखता धरती की है, उसके जीवन-स्पन्दन के अनुभव की है जो उसके कण-कण में प्रवाहित होता रहता है, गीत बनकर गुंजित होता है, शेष सब या तो केवल पृष्ठभूमि भर है या परिवेश का कार्य करता है। भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परम्परा व वैज्ञानिक माध्यम मिलकर ही 'अंचल' के नायकत्व को शब्द देते हैं। इस नायक का व्यक्तित्व खोजने और इसे मूर्त करने के लिए, उस क्षेत्र विशेष की प्राकृतिक बनावट, सीमाओं, क्षेत्रफल, खेत, नदी, पहाड़, मैदान, पशु-पक्षी मिट्टी-पानी आदि का चित्रण किया जाता है। इस लोकेशन या भू-भाग का उल्लेख पृष्ठभूमि भर तैयार करने के लिए नहीं होता। ऐसा करने पर इसमें आंचलिकता का आभास भर हो सकता है, विशुद्ध आंचलिकता की परिधि या परिभाषा में ये चित्रण ग्रहण नहीं किये जाते।

---

1- "The tendency of some writers to set their works in a particular locality, presented in some detail as affecting the lives and fortunes of the inhabitants. "Joseph T Shipley : Dictionary of world literary terms. Page-337-338

आंचलिकता और स्थानीय रंग में अंतर है- 'उद्देश्य, प्रधानता, परम्परा तथा प्रभाव का। स्थानीय रंग के अर्थ में आंचलिक वर्णन का ग्रहण सामान्य तत्व के रूप में होता है, जब कि आंचलिक उपन्यास में 'आंचलिकता' प्रमुख तत्व या लक्ष्य होती है।[१]. 'स्थानीय रंगत वाले उपन्यास में ''वातावरण को अधिक सजीव और यथार्थ बनाने और पात्रों में स्वाभाविकता लाने के लिए कला के विकास-क्रम में परिस्थिति के अनुकूल यथास्थान आंचलिक और स्थानीय रंगों, रीति-रिवाज, भाषा आदि का पुट दे दिया जाता है।''[२]. इस चित्रण को आंचलिकता के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता क्योंकि ऐसा करने से प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा आदि के उपन्यासों को भी आंचलिक मानना पड़ेगा।

'स्थानीय रंगत वाले उपन्यास में किसी अंचल-विशेष को कथा का 'पटफलक' बनाकर उसके रूप-रंग का प्रयोग केवल रंगत भर देने के लिए होता है, अर्थात मूलतत्व के रूप में न होकर साज-सज्जा के रूप में होता है।'[3] जबकि आंचलिक चित्रण में क्षेत्र-विशेष का समग्र जीवन ही नायक होता है, अंचल ही नायक बनकर जीता है। अत: उसकी समग्रता को शब्दों में प्रकट करने के लिए वहां की प्रकृति, वन, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, विश्वास, धर्म, भाषा आदि का प्रयोग किया

---

१. ''---आंचलिक उपन्यासों के प्रचलन से पूर्व भी यथार्थवाद का पुट देने के लिए किसी अंचल विशेष की भाषा, रीति-रिवाज आदि का प्रयोग उपन्यासकार किया करते थे, किन्तु यह वर्णन और इस प्रकार के उपन्यास आंचलिक उपन्यासों से स्पष्टत: भिन्न है। प्रथम प्रकार के उपन्यासों में क्रमश: आंचलिकता सामान्य तत्व होती है जबकि दूसरे प्रकार के उपन्यासों में आंचलिकता ही प्रमुख तत्व होती है।'' -डॉ. मक्खनलाल शर्मा,'हिन्दी उपन्यास: सिद्धान्त और समीक्षा', पृष्ठ-३५९

२. श्री ब्रजविलास, श्रीवास्तव, 'आलोचना', १७जनवरी-१९५६.

३. " The use of environmental detail in a story differs from regionalism in its mainly picturesque intent. Its interest lies in exploring a new or unfamiliar setting or in preserving the record of a changing or dying local while the regionalist sees in each region different conditions that operate profoundly in the lives of its people and thus develop different patterns of culture and conuntry side... local colour thus presents super ficial elements of story, just as decoration". -Joseph T. Shipley, Dictionary of world literary terms. Page - 257

जाता है।

'स्थानीय रंग' से आंचलिकता का भ्रम पैदा करने का प्रयत्न बराबर होता रहा है। स्थानीय रंगत तो प्राय: सभी उपन्यासों में होती है। कथा जिस प्रदेश में बहती है, वहाँ की प्रकृति, वेश-भूषा, रीति-रिवाज आदि की रंगत लेखक उपन्यास में देता चलता है। 'आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका सम्बन्ध जनपद से होता है, ऐसा नहीं, वह जनपद की ही कथा है।'[1] अंचल की इस समग्रता को आत्मसात् करने वाला कलाकार उस माटी के कण-कण से न केवल परिचित होता है वरन् उसके प्रति उसका एक सहज स्नेह होता है और उसकी दृष्टि बाहरी रंगों, रूपों और स्वरों को अपने काल्पनिक कथानक को मोहक बनाने के लिए प्रयोग करने भर में नहीं रमती। उसका देखना बाहरी शोभा पीने या भौगोलिक दृष्टि से भूमि या भू-भाग का सर्वेक्षण प्रस्तुत करने तक सीमित नहीं है। उदाहरणार्थ, प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्राम-जीवन की छवि है, किन्तु उनका गांव स्थानीय रंगत के बावजूद 'सामान्य' है, विशेष नहीं। उनका उद्देश्य भी उत्तर भारत के किसी 'ग्राम अंचल' का चित्रण करना नहीं, वरन् सामान्य ग्रामों की 'सामान्य समस्याओं' और जीवन मूल्यों'[2] की कहानी कहना है। भारतीय कृषक की पीठिका तैयार करने के लिए ही ग्रामीण वातावरण का उपयोग किया गया है-यहाँ प्रधान है-कथा, न कि अंचल-विशेष। इसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में भी हम देखते हैं कि वहाँ 'स्थानीय रंग का पर्याप्त उपयोग करते हुए वातावरण, पात्र आदि में अधिक सजीवता उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है, पर यहाँ भी लेखक का उद्देश्य भिन्न है। इसलिए 'स्थानीय रंग' को यहाँ वह प्रमुखता नहीं मिल सकी जो एक आंचलिक उपन्यास में आंचलिकता को प्राप्त होती है। यहीं आंचलिकता और स्थानीय रंग का सूक्ष्म अन्तर है।

'स्थानीय रंग' साधन है, जबकि आंचलिकता साध्य। स्थानीय रंग की स्थिति उपन्यास में ऐच्छिक होती है। इसका अंकन लेखक के चाहने या न चाहने पर निर्भर करता है, जबकि आंचलिक उपन्यास में आंचलिकता अनिवार्य है। इसकी अनिवार्यता इसलिए है कि बिना इसके, कथाकार अपने अंचल-विशेष की विशिष्ट-जीवन पद्धति को उसके समग्र एवं संश्लिष्ट

---

१. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृष्ठ-१८८.

२. वही,पृष्ठ-१८८.

रूप में, जो उसका मूल प्रतिपाद्य है, सफलता के साथ उभार ही नहीं सकता। अतः कह सकते है कि आंचलिकता एक आंचलिक कथाकार के कृतित्व को सार्थकता प्रदान करती है, जबकि 'स्थानीय रंग' उपन्यास के लिए अलंकरण का काम करता है।

श्री जालादि विश्वमित्र आंचलिकता और स्थानीय रंग का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "स्थानीय रंग आंचलिकता नहीं होता है, क्योंकि आंचलिकता एक स्मृति है और आंचलिक उपन्यासकार किसी-विशेष अंचल (भू-भाग) की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं एवं परम्पराओं का जन-जीवन पर गहरा प्रभाव डालने वाली ऐसी शक्ति के रूप में वर्णन करता है जिसमें उसकी एक विशिष्ट जीवन-पद्धति मुखर होती है। परन्तु स्थानीय रंग में किसी गांव या शहर का किसी स्थान की रीति-रिवाज, रहन-सहन, बोली, खान-पान आदि की विचित्रता पूर्ण या कृत्रिम विशिष्टता का चित्रण कथा के आधारभूत तत्व के रूप में न करके अलंकरण के रूप में किया जाता है।"[१].

इस सम्बन्ध में डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय ने अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है."आंचलिकता में आत्यन्तिक विशिष्टीकरण और स्थानीयकरण का गुण होता है जिसका चरम यथार्थ रूप 'रेणु' के 'मैला आंचल' में प्रकट हुआ है। हिन्दी में ऐसे आंचलिक उपन्यास पांचवें और छठे दशकों के पूर्व नहीं लिखे गये और न उनका कोई निश्चित रूप प्रकट हुआ। उनके अनुसार-आंचलिक रंग तो आंचलिकता की एक विशेषता है।"[२].

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि स्थानीय रंग वाले उपन्यासों की तुलना में आंचलिक उपन्यासों में अंचल की भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं सामाजिक परम्परा को मूर्त रूप देने वाले दृश्यों, स्थितियों आदि का प्रयोग केवल रुचि-वैचित्र्य या प्रयोग जैसी स्थिति नहीं, आंचलिक चित्रण की अनिवार्य आवश्यकता है, जिसमें अंचल के जीवन को उसकी सम्पूर्णता और समग्रता में व्यक्त करने का अपरिहार्य आग्रह है। यह न तो शिल्पगत चातुर्य की मांग है और न किसी जीवन-दर्शन को व्यक्त करने की चेष्टा, वरन् आंचलिक चित्रण की अनिवार्य जीवन-स्थिति है, अभेद्य अंग है। वह अंचल की जीवन्तता को सहज मुखरित ही नहीं करता,

---

१. श्री जालादि विश्वमित्र, 'उपन्यास कलाः एक विवेचन', पृष्ठ-७६१

२. डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय,'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य', पृष्ठ-१४.

उसे सह संवेद्य, जाग्रत तथा अनुभूतिपरक बनाता है।

आंचलिक संस्पर्श

स्थानीय रंग से मिलती-जुलती एक अन्य विशेषता की ओर भी ध्यान जाता है और वह है आंचलिक संस्पर्श। डॉ. बेचन 'स्थानीय रंग' और 'आंचलिक संस्पर्श' दोनों में अर्थ-साम्य देखते है क्योंकि स्थानीय रंग की तरह 'आंचलिक संस्पर्श भी उसी उपन्यास में दिया जाता है, जिसका प्रतिपाद्य आंचलिक न होकर उससे भिन्न कुछ अन्य होता है। उनके अनुसार ''आंचलिक संस्पर्श' हम वहीं देखते है जहाँ लेखक का मुख्य उद्देश्य कुछ दूसरा ही होता है और उसकी पूर्ति के लिए वह आंचलिक विशिष्टताओं का चित्रण करता है--- प्रधान उद्देश्य नवीन सामाजिक पृष्ठभूमि में उठते-उभरते हुए नये मानव, आर्थिक-सामाजिक संघर्ष एवं जीवन का चित्रण करना है। ऐसे उपन्यास की सृष्टि का श्रेय नागार्जुन एवं 'रेणु' जैसे लेखकों को दिया जा सकता है।''[१]

इस सन्दर्भ में डॉ. जालादि विश्वमित्र का मत डॉ. बेचन से थोड़ा भिन्न है। वे कहते है- ''आंचलिक संस्पर्श में आंचलिकता के समान किसी भू-भाग के विशिष्ट जीवन का चित्रण नहीं होता, बल्कि इसमें लेखक अपनी रचना के भीतर आये विभिन्न स्थलों की विशिष्टताओं की थोड़ी झलक दे देता है, पर उसका मूल उद्देश्य किसी अंचल विशेष के जीवन की अभिव्यक्ति ही नहीं होता।''[२]

डॉ. आदर्श सक्सेना ने उक्त दोनों मतों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''डॉ. बेचन आंचलिक संस्पर्श को एक प्रभावशाली साधन मानते है; जिसका उपयोग उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक समझा जाता है जबकि जालादि विश्वमित्र के अनुसार यह केवल सुसज्जा की वस्तु है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि दोनों ही विद्वानों की दृष्टि में 'आंचलिक संस्पर्श' और 'आंचलिकता' के बीच काफी दूरी है और कथाकार अपने औपन्यासिक ध्येय की प्राप्ति में इसका उपयोग करता है।''[३] डॉ. आदर्श

---

१. डॉ. बेचन, 'आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-चित्रण', पृष्ठ-१८६

२. डॉ. जालादि विश्वमित्र, 'उपन्यास कला: एक विवेचन', पृष्ठ-७८

३. डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि', पृष्ठ-३५

४. वही, पृष्ठ-३५

सक्सेना ने 'आंचलिक संस्पर्श' को 'आंचलिकता' और 'स्थानीय रंग' के मध्य की वस्तु माना है, 'जिसमें यदि आंचलिकता वाली गहराई नहीं होती है तो स्थानीय रंग का उथलापन भी नहीं होता। कथाकार अनजाने ही कथांचल का चित्रण कर दिया करता है।'[१]

उपर्युक्त मन्तव्यों के आधार पर हम कह सकते है कि आंचलिक संस्पर्श में आंचलिकता के समान किसी निश्चित भू-भाग का विशिष्ट चित्रण सम्भव नहीं होता बल्कि इसमें लेखक उन स्थलों की विशिष्टताओं की हल्की झलक देते हैं जो उनकी रचनाओं में आये हैं। मूलत: उसका उद्देश्य किसी अंचल विशेष के जीवन की अभिव्यक्ति नहीं होता, बल्कि यह यथार्थ निरूपण की एक प्रणाली है जिसके द्वारा कथाकार देशकाल व वातावरण का प्रभावशाली रूप उपस्थित कर कथा को अधिक अर्थपूर्ण, चरित्र-चित्रण को अधिक स्वाभाविक, शैली को अधिक चित्रोपम तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ को रोचकता प्रदान करता है।

## हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता का विकास

प्राच्य और पाश्चात्य दोनों साहित्य जगत् में आंचलिक उपन्यास का उद्भव अपने-अपने वैकासिक क्रम में दिखाई पड़ता है। चूँकि हिन्दी उपन्यास के विकास में अंग्रेजी नॉवेल की प्रेरणा को भी आलोचकों द्वारा स्वीकृति मिली है, संभव है कि रीजनल नॉवेल भी हिन्दी के आंचलिक उपन्यास लेखन में परोक्ष प्रेरक रहे हों। इसलिए इन दोनों ही भाषा-परिवेश की चर्चा उचित जान पड़ती है। पश्चिम में आंचलिकता का आगमन 'रोमांटिक मूवमेंट' से होता है, जो आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति की नींव पर बसे शहरों की घुटन एवं व्यस्तता के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न होता है। डेनियल हाफमैन के अनुसार भी ''साहित्य में प्रादेशिकता संसार व्यापी रोमांटिक आंदोलन की ही अभिव्यक्ति है। इसकारण उन सब राष्ट्रों के साहित्य में जो इस आन्दोंलन से प्रभावित थे, इसके दर्शन हो जाते हैं।''[१] परन्तु हिन्दी उपन्यास की आंचलिक प्रवृत्ति पाश्चात्य उपन्यास की प्रादेशिक प्रवृत्ति से पर्याप्त भिन्न है, और हिन्दी का 'अंचल' शब्द अंग्रेजी के 'रीजन' शब्द का पर्याय भी नहीं है। इसका कारण यह है कि अंचल अथवा आंचलिक शब्द का भाव व्यक्त

---

१. " Literary regionalism is an expression of the world wide romantic mevement and hence is found in the literature of all nations influenced by it ". Denial G Hoffman- The encyclopedia americana, Volume - XVII, Page : 571

करने वाला कोई भी शब्द अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध नहीं है। अंग्रेजी का 'रीजन' शब्द ही हिन्दी के 'अंचल' शब्द के अधिक निकट पहुँच पाता है, अत: अध्ययन की सुविधा के लिए इसी शब्द को सीमित अर्थ में अंचल का पर्याय स्वीकार कर लिया गया है।[१] 'रीजनल' और 'आंचलिक' के शाब्दिक अन्तर के बावजूद इन दोनों के अभिप्राय की समानता स्वीकार करते हुए डॉ. आदर्श सक्सेना को किसी अर्थान्तर का भय और हानि अनुभव नहीं होता। वह लिखते हैं- ''प्रथम तो केवल पाश्चात्य साहित्य के सन्दर्भ में 'रीजन' (प्रदेश) अथवा 'रीजनल' (प्रादेशिक) को अंचल अथवा आंचलिक का पर्याय माना गया है; भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में नहीं। दूसरे, भारत के सम्बन्ध में जो आंचलिकता है वहीं पाश्चात्य देशों के सम्बन्ध में प्रादेशिकता है क्योंकि भारतीय अंचलों के रूप पश्चिम में अप्राप्य है। इसका कारण है, पाश्चात्य देशों की संकीर्ण भौगोलिक सीमा और ये देश जिस आंचलिकता को ग्रहण किए हुए होते हैं वह वास्तव में उनकी राष्ट्रीयता होती है क्योंकि सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है, जब कि भारत के समान विशाल देश में जहाँ विभिन्न भागों की परिस्थितियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं, जहाँ एकता में अनेकता प्राप्त होती है, वहाँ विभिन्न अंचलों का निर्माण एक साधारण बात है।''[२]हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों के विकास के अध्ययन के लिए हमें पाश्चात्य साहित्य में रोमांटिक आंदोलन के जन्म के कारणों एवं उसके विकास की स्थितियों पर विचार कर लेना आवश्यक है ।पश्चिम में रोमांटिक आन्दोलन का सूत्रपात पूर्ववर्ती सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थिति के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। साहित्य में यह क्लासिकल प्रवृत्ति का विरोधी आन्दोलन था। अत: १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस जागृति के फलस्वरूप उन प्राचीन लेखकों की ओर पुन: ध्यान गया, जिन्हें क्लासिज्म ने उपेक्षित किया था। जिज्ञासा की नवीन प्रवृत्ति जन्मी और प्राचीनता के प्रति प्रेम ने हाब्स एवं ल़ॉक की दार्शनिकता का आश्रय लेकर ऐतिहासिक प्रवृत्ति को जन्म दिया। ह्यूम, रावर्टसन एवं गिब्बन आदि इस प्रवृत्ति को पोषित करने वालों में थे। फलत: यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित हो चला। रिचर्ड्सन एवं फिल्डिग ने वास्तविकता के गहनतम् रूपों को अपने उपन्यासों में व्यक्त किया। बर्नस,

१. डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प -विधि' पृष्ठ-६१

२. वहीं, पृष्ठ-२१

काउपर तथा क्रैब ने मानवता के प्रति अपार सहानुभूति प्रकट की। १९वीं शताब्दी में यह विचारधारा और गहराती गई और सरल जीवन का आदर्शीकरण किया गया। यह अनुभव किया जाने लगा कि उसी व्यक्ति में उच्च एवं पवित्र भावों का उदय हो सकता है, जो नृशंस एवं परम्परावादी समाज के कुप्रभावों से मुक्त है। इस विचार धारा का प्रवर्तक फ्रांसीसी क्रान्ति का जनक रूसो था। मानव की प्रारम्भिक धारणाएँ अच्छी होती हैं, क्योंकि वह प्राकृतिक होती हैं। इस पर उसे दृढ़ विश्वास था। प्रकृति का अंचल त्यागने पर मनुष्य विलासी, पाखण्डी और दुष्ट हो जाता है। इसीलिए मानव-संस्थाओं के कुप्रभावों से बचने के लिए प्रकृति की ओर लौट चलना चाहिए। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में ही पूर्णता की साधना हो सकती है, मनुष्य अपने लिए वांछित सब कुछ सीख सकता है। गावों एवं दूर-दराज अंचल में बसी जन-जातियों की निकटता नें प्रकृति-प्रेम की धारा प्रवाहित की। वर्ड्सवर्थ के प्रकृति प्रेम की धारा में अवगाहन कर उस युग की कलाकारिता निखर आई। जीवन की व्यस्तता और भाग-दौड़ से खिन्न होकर वर्ड्सवर्थ ने प्रगतिशील जीवन पर कठोर प्रहार किया।[१] प्रकृति के आदर्शीकरण में उनका अन्यतम् योगदान रहा। उनके अनुसार प्रकृति के संसर्ग से प्राप्त एक अनुभूति भी सम्पूर्ण जीवन की नैतिकता का पाठ पढ़ा सकती है।[२] प्रकृति की गोद में स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने के लिए वे असभ्य पैगन जाति में जन्म लेना भी सहन कर सकते थे। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति ने रोमांटिक आंदोलन को प्रोत्साहन दिया और उसकी प्रवृत्तियों के विकास के साथ-साथ आंचलिक साहित्य की ओर उन्मुख प्रवृत्ति देखी जाने लगी। रोमांटिक कलाकार सामान्य व्यक्ति के प्रभावों अथवा अवगुणों की ओर से दृष्टि नहीं फेर लेता। इसीलिए उसके अन्धविश्वासों, परम्पराओं, मान्यताओं आदि को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। सामान्य मानव का कार्य-क्षेत्र प्रकृति का उन्मुक्त प्रांगण है जो उसके सम्पूर्ण जीवन को नियमित और

---

१. LEISURE - Wordsworth -डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि' से उद्धृत, पृष्ठ-६४

२. One empulse from vernal woods
may teach you more of man
of moral evil and of good
than all the sages can--- Wordsworth. वहीं, पृष्ठ-६४

मर्यादित करती है। इसी कारण प्रकृति और वातावरण की छाप आंचलिकता की मुख्य विशेषता है। इनकी भाषा में भी कृत्रिमता का त्यागकर स्वाभाविकता के समावेश का आग्रह था। इस प्रकार पाश्चात्य साहित्य जगत् में प्रादेशिक उपन्यासों का जन्म रोमांटिक आंदोलन के परिणाम स्वरूप हुआ और ये प्रादेशिक उपन्यास प्रकृति की गोद में बसे अत्यंत पिछड़े समाज का चित्रण करते थे और अपना विषय उस मनुष्य को बनाते थे जो निरीह, पीड़ित और सरल था एवं नवीन मानव जागृति के बावजूद भी चेतना के अभीष्ट धरातल पर नहीं आ पाया था। ये प्रादेशिक उपन्यास प्रकृति के प्रभावों को स्वस्थकर मानते थे तथा स्वाभाविता को, भले ही वह अटपटी लगे, तथाकथित सभ्य समाज से अधिक महत्व देते थे। इनमें एक विशिष्ट भाषा-शैली का प्रयोग होता था जिसमें अंचल या क्षेत्र विशेष की मिट्टी की सुगन्ध होती थी तथा लोक-गीतों एवं लोक-भाषा का रस भरा होता था जिससे उस क्षेत्र का सम्पूर्ण दृश्य उभरकर हमारे सामने आ जाती है।

ये सारी परिस्थितियाँ हिन्दी भाषा परिवेश में भी समान रूप से हो ही यह जरुरी नहीं। रोमांटिसिज्म का प्रभाव छायावाद-काल की रचनाओं पर स्वीकार करने वाले आलोचक भी रहे हैं और इस काल के मुक्त विकास को मानने वाले भी रहे हैं। इसी प्रकार अन्य विधाओं में भी पाश्चात्य प्रभावों से विकास का क्रम जोड़ने वाले आलोचक भी हैं और स्वतन्त्र विकास-क्रम मानने वाले भी।

भारतीय साहित्य में प्रकृति का मुक्त चित्रण और साहचर्य दिखाई पड़ता है। यहाँ के मनीषियों ने धरती के प्राकृतिक स्वरूप को तो गाया ही आकाशीय पिण्डों को भी अपनी भाषा में समेट लिया। यहाँ की उपमाएँ पेड़-पौधे, लता-कुसुम, पशु-पक्षी, झील-नद और पहाड़ों के अतिरिक्त चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र और बुद्ध जैसे ग्रहों से भी दी गई है। आचार्य दण्डी ने महाकाव्यों के लिए, नहरो, समुदों, पर्वतों, ऋतुओं, चन्द्र सूर्य आदि का वर्णन आवश्यक माना है (नगरार्ववशैलर्तु चंन्द्र सूर्यादि वर्णनैरलंकृतम्)। प्राकृतिक परिवेश को भाषा का उपादान बनाने का आग्रह भारतीय साहित्य की विशेषता रही है। लेकिन पाश्चात्य साहित्य में प्राकृतिक विविधता के बदले अधिकतम् समानता होने और अहंवादी, कौतुकपूर्ण, भोगबाहुल्य साहित्य होने के कारण अलग तरह की विशेषताएँ उत्पन्न हुई। पाश्चात्य साहित्य की आंचलिक चेतना भी उनके निजी विकास का परिणाम है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह के अनुसार- "आंचलिकता के सशक्त आन्दोलन के रूप में सबसे प्रभावशाली रूप अमेरिकी साहित्य में दिखाई पड़ता है, जहाँ 'न्यू फ्रन्टियर्स मूवमेंट' के झण्डे के नीचे विदेशी प्रभावापन्न नागर-आधुनिकता उद्योगीकरण आदि के विरोध में इसे अपनी धरती और लोक-संस्कृति से जोड़ने के साथ क्षेत्रीय जीवन की विशेषताओं को उभारकर व्यापक प्रसार दिया गया है। विशेषकर योरोपीय संस्कृति के प्रति अंध-श्रद्धा भाव ध्वस्त करना उनका उद्देश्य है।"[१.]

पाश्चात्य साहित्य में आंचलिक उपन्यासों का प्रारम्भ १८०० ई. से माना जाता है जब मारिया एजवर्थ का 'कैसेल-रेक्रेन्ट' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में एजवर्थ ने आयरलैण्ड निवासियों एवं किसानों का सहानुभूति पूर्ण मार्मिक चित्र खींचा है। आयरलैण्ड की सामाजिक दशा को सुधारने के उद्देश्य से उसने उपन्यास लिखे । एजवर्थ से पूर्व के उपन्यासें में केवल लंदन शहर के व्यक्तियों का चित्रण हुआ करता था। एजवर्थ ने प्रथम बार अपना ध्यान इस उपन्यास में ग्रामीण तथा अनपढ़ किसानों की ओर दिया।[२.] परन्तु हिन्दी के उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति बहुत बाद में आई। फिर भी इनकी "प्रगति आश्चर्यजनक ही कही जायेगी। हमारे यहाँ आंचलिकता के पोषक तत्वों का अस्तित्व तो बहुत पहले से प्रचुर मात्रा में रहा है परन्तु उपन्यासों में उसकी अभिव्यंजना बहुत बाद में हुई और जब हुई तब काफी सघनता के साथ हुई। एक दशक के अल्प समय में इतनी बड़ी सिद्धि साधारण बात नहीं है।"[३]

आंचलिकता के अन्तर्गत जिन तत्वों की गणना की जाती है उनका समन्वय हिन्दी उपन्यास में धीरे-धीरे होता रहा और अचानक ही फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने उपन्यास 'मैला आंचल' को आधार बनाकर इस विधा का नामकरण भी कर दिया। जैसा कि डॉ. विवेकी राय भी स्वीकार करते हैं- "स्वातन्त्र्योत्तर कथा-शिल्प का पूर्व कथा-शिल्प से भिन्नत्व स्पष्ट करने के लिए 'आंचलिक' संज्ञा और तद्नुरूप सृजन के प्रवर्त्तक फणीश्वरनाथ 'रेणु' हैं। किन्तु यह प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है।"[४]

---

१. डॉ.शिव प्रसाद सिंह, 'आधुनिक परिवेश और नव लेखन', पृष्ठ-११६
२. डॉ. ह. के कडवे,'हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति', पृष्ठ-९६
३. श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, 'हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण', पृष्ठ-१८९
४. डॉ. विवेकी राय,'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन', पृष्ठ-४३३

हिन्दी उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को उसके सही रूप में सर्व-प्रथम प्रेमचन्द ने ही पहचानने का सफल प्रयास किया। उनके पूर्व के उपन्यासों में विषय और उद्देश्य की दृष्टि से कुछ न कुछ विविधता होने पर भी वे एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं हैं और वे "उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्राप्त करने में असमर्थ हैं।"[१] "प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासकार भारत में प्रचलित कथा-कहानियों के प्रभाव से भी नहीं उबर सके थे और वे उपन्यास को मनोरंजन या सुधार का साधन मान बैठे थे।"[२] प्रेमचन्द ने ही पहले-पहल उपन्यास को उसके वास्तविक अर्थ में पहचाना। प्रेमचन्द की इस पकड़ का प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर दूर तक दिखाई देता है। अतः हिन्दी उपन्यास को एक नवीन दिशा में उन्मुख करने के कारण इसके इतिहास को प्रेमचन्द को ही आधार बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। इस रूप में काल-विभाजन का यह आधार स्पष्ट करता है कि प्रेमचन्द ने ही हिन्दी उपन्यास को कल्पना से यथार्थ की ओर मोड़कर उसे जीवन के अधिक निकट लाने का प्रयत्न किया, जो पूर्ववर्ती उपन्यास को मनोरंजन, रोमांस एवं सुधार के गहरे प्रभावों से मुक्त कर सामान्य जीवन के निकट लाता है। इसे प्रेमचन्द के समकालीन लेखकों ने भी परम्परा के रूप में ग्रहण किया और उसे गतिशील करने का स्तुत्य प्रयास किये। प्रेमचन्द ने जिस परम्परा का सूत्रपात किया वह आगे भी गतिशील रहीं और यशपाल,[३] अमृतलाल नागर,[४] भगवती चरण वर्मा[५] आदि उपन्यासकारों में 'परिवर्तित परिस्थितियों में युगीन भाव-बोध के साथ निरंतर विकसित होती रहीं।'[६]

## प्रेमचन्द-पूर्व युग में आंचलिकता

प्रेमचन्द-पूर्व युग के उपन्यासों का उद्देश्य अत्यन्त स्थूल था, इसलिए उनका मनोरंजन भी सतही रहा; उसमें मन को छूनेवाली गहराई और मर्मस्पर्शिता

---

१. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा', पृष्ठ-२०
२. वहीं, पृष्ठ-२०
३. यशपाल: दादा कामरेड, मनुष्य के रूप।
४. अमृतलाल नागर: महाकाल, बूँद और समुद्र।
५. भगवती चरण वर्मा: टेढ़े-मेढ़े रास्ते, चित्रलेखा, भूले-बिसरे चित्र।
६. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, 'हिन्दी उपन्यास: उपलब्धियाँ', पृष्ठ-१९.

का अभाव रहा और उपदेश में भी सूक्ष्मता एवं सांकेतिकता का अभाव बना रहा। उसमें अनुभूति की तीव्रता नहीं है। जो कुछ है निर्बन्ध कल्पना का विलास और सतही बुद्धि का वैभव। यहीं उसमें प्राणतत्व की कमी का कारण है। 'किसी स्पष्ट वैचारिक दृष्टिकोण के अभाव में उन उपन्यासों में जो प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, वे हैं-गम्भीरता का अभाव, अंग्रेजी उपन्यासों का अनुकरण और पात्रों की अवहेलना कर घटना पर दृष्टि जमाना।'[१]

ये प्रारम्भिक उपन्यासकार चाहे किसी भी मत के अनुयायी रहे हों, उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था। वे नैतिकता का उत्थान और संस्कृति की रक्षा चाहते थे। सामाजिक उच्छृंखलता को दूर कर भारतीय आदर्शों की स्थापना के लिए वे प्रयत्नशील थे। इसलिए, 'इन उपन्यासों में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों का ही विशेष वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से उनका परिवेश अत्यन्त सीमित है। भाव-बोध के नवीन स्तर स्थापित कर उन्होंने किन्ही नए आयामों की कल्पना नहीं की--- इस युग का आदर्शवाद नैतिकता की विजय, न्याय पक्ष की विजय एवं परम्परागत आदर्शों पर तो बल देता है, पर उसने ऐयारी एवं तिलस्मी प्रभावों के कारण अपने को पर्याप्त अंशों में खण्डित भी किया है, तथा अपने स्वरूप को विकृत बनाया है।[२] विशेष बात यह है कि उक्त आदर्शवाद सामाजिक यथार्थवाद के समान स्तर पर नहीं चलता। सम्भवत: इसका कारण यह है कि इन उपन्यासों में यथार्थ को सचेष्ट ग्रहण नहीं किया गया, वह स्वयमेव चित्रित हुआ है। हालाँकि 'भाग्यवती'[3] जैसे उपन्यास भी मिलते हैं जो अपनी सामाजिक यथार्थवादिता के कारण ही विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द-पूर्व युग के उपन्यासों की सबसे प्रमुख और सामान्य विशेषता है- उनका घटना-प्रधान होना। 'अपनी इसी विशेषता के कारण इस युग के सभी प्रकार के उपन्यासों में पात्रों की योजना, चारित्रिक विशिष्टताओं, मानसिक सत्यों की निगूढ़ताओं, सामाजिक परिवेश के साथ उनके विभिन्न सम्बन्धों के चित्रण के लिए नहीं होतीं, घटनाएँ भी गहन जीवन सन्दर्भो और पात्रों की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं से प्रभावित नहीं होती; वे जीवन के विभिन्न प्रश्नों समस्याओं और आकांक्षाओं की जटिलताओं से उलझी नहीं होतीं,

---

१. श्री ब्रजनन्दन सहाय: 'राधाकान्त' की भूमिका।

२. डॉ. सुरेश सिन्हा, 'हिन्दी उपन्यास: उद्‌भव और विकास', पृष्ठ-४२

३. पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी: 'भाग्यवती'।

सनसनी पैदाकरने वाली कौतूहल-वर्द्धन करने वाली या विशेष सुधारवादी अन्त तक पाठक को पहुँचाने वाली घटनाओं को लेखक अपने ढ़ंग से सजाता चलता है।'[1]

घटना-प्रधान उपन्यासों में पात्रों की निजी विशेषता नहीं होती। वे टाइप होते हैं। विशिष्ट व्यक्तितत्व से विहीन ये पात्र कोई भी हो सकते हैं, कहीं भी हो सकते हैं और कुछ भी कर सकते हैं । मानवेतर प्राणी भी पात्र होते हैं। आंचलिक उपन्यास में भी पात्र विशिष्ट नहीं होते किन्तु वे कोई भी और कहीं भी नहीं होते। वे सामान्य होने पर भी एक वर्ग या वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। अंचल स्वंय एक जीवन्त प्राणी की भूमिका निबाहता है, किन्तु इनमें मानवीय संवेदना पूरी गहराई से चित्रित की जाती है। 'आंचलिक उपन्यास के पात्र आलोच्य युग के उपन्यासों के पात्रों की तरह हमारे राग-विराग को ऊपरी स्तर पर छूते हुए विस्मय और कौतूहल पैदा करते हुए नहीं चलते।'

परिवेश के अन्तर्गत इन उपन्यासों में वातावरण तत्व में अभौतिक एवं अस्वाभाविक परिस्थितियों के बीच भी प्रकृति वर्णन के सुन्दर चित्र मिल जाते हैं। यह वर्णन यद्यपि सोद्‌देश्य नहीं है तथापि इस तथ्य का परिचायक है कि उस काल का उपन्यासकार वातावरण के चित्रण के महत्व को स्वीकार करता है। वातावरण के चित्र इस युग में दो प्रकार के मिलते है- प्राकृतिक और सामाजिक। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कृति 'एक कहानी: कुछ आपबीती कुछ जगबीती' का दो उदाहरण प्रस्तुत है जो प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण के समावेश की पुष्टि करते हैं -

'सन् १९३० में जब मैं तेइस बरस का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ऋतु, हवा ठंडी चलती थी। सांझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य पर दोनों लाल-लाल अजब समां बंधा हुआ, कसेरू गडेरी और फूल बेचने वाले सड़क पर पुकार रहे थे-'

''यह तो दीवान खाने का हाल हुआ अब सीढ़ी का तमाशा देखिये। चार-पाँच मुसलमान सिपाही एक जमादार, दो-तीन उम्मेदवार और दस-बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है, हाय रूपया सबके जबान पर- कोई रंडी के भडुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार

---

१. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृष्ठ-२१-२२.

से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दर्शन भी दुर्लभ हो जाएगा।''[१]

भारतेन्दु की इन पंक्तियों से बनारस के तत्कालीन परिवेश का परिचय मिल जाता है। इन पंक्तियों में प्रादेशिक गुण निहित है।

इस प्रकार वातावरण के अनेकानेक सुन्दर चित्र होने पर भी वे आंचलिक चित्रण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करते। उनका प्रमुख उद्देश्य कोई भाव जाग्रत करना अथवा जाग्रत भाव को कायम रखना होता है। कभी-कभी कथानक की कड़ियों को जोड़ने के लिए भी उनका प्रयोग किया जाता है। किसी विशिष्ट अंचल के जीवन का चित्रण करने की दृष्टि से कहीं भी प्रकृति चित्रण या वातावरण चित्रण की संयोजना नहीं है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रेमचन्द-पूर्व का उपन्यास-साहित्य आंचलिकता के तत्वों से रहित है।

## प्रेमचन्द युग में आंचलिकता

प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना। पहचाना ही नहीं उसे भव्य समृद्धि प्रदान की, काफी ऊँचाई तक ले गये।'[२] उनके उपन्यासों में भारतीय जीवन का वह रूप मिलता है जो उनके पूर्व या समकालीन उपन्यासों में नहीं मिलता । उनमें क्षेत्रीय भूगोल, भाषायी प्रवृत्ति और विराट फलक की अन्य विविधताओं से अलग सामाजिकता की छवि अधिक मुखर है। उनके उपन्यासों में 'जिस आदमी का बिम्ब प्रतिस्थापित होता है वह आदमी स्वाधीनता संग्राम के युग का आदमी है।'[३]

प्रेमचन्द का लेखन-काल १९१८ ई. से १९३६ ई. तक फैला हुआ है। यह एक प्रकार से दो विश्व-युद्धों की भूमिका का रचना काल है और भारतीय स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ भी इससे जुड़े हैं। प्रेमचन्द की औपन्यासिक रचना-संसार को मार्क्सवादी आलोचना ने वर्ग-चेतना की दृष्टि से व्याख्या दी है। उनके उपन्यास सामाजिक यथार्थ और वर्ग-द्वन्द के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनके आदर्शोन्मुख कृतियों में भी इन विशेषताओं के छींटे दिखाई पड़ जाते हैं। उनका आग्रह आंचलिकता पर बिल्कुल नहीं

---

१. डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प -विधि, से उद्धृत, पृष्ठ-७१

२. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा' पृष्ठ-३३

३. डॉ. गंगा प्रसाद विमल: 'प्रेमचन्द', पृष्ठ-११२.

है। उन्होंने ग्राम और नगर की सीमाओं को भी निभाने का प्रयास नहीं किया है।

प्रेमचन्द का दृष्टिकोण उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में सुधारवादी और आदर्शोन्मुख है (यह पिछली परम्परा का इन पर प्रभाव कहा जा सकता है)। प्रारम्भिक उपन्यासों में, यों लगता है कि उनके सामने कुछ समस्यायें हैं, कुछ स्थितियाँ हैं जिन्हे वे बाहर से देख रहे हैं और जिनके लिए कुछ आदर्श, कुछ समाधान या कोई मार्ग-प्रदर्शन उन्हें देना है। यह सब कुछ तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लगता है। यहां उनका स्वर पाठक को सम्बोधित करने का है; दूसरों को समझाने का है; न कि वे स्वयं के प्रति सम्बोधित हैं और उनका स्वर अपने को समझाने का है। वस्तुत: यह यथार्थवादी दृष्टिकोण की वह अनिवार्य मांग है जो प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देती है। आदर्श के प्रति प्रेमचन्द का मोह 'रंगभूमि' के साथ ही भंग हो गया था। 'प्रेमचन्द ने सबसे पहले रंगभूमि में यह अनुभव किया था, कि सारा का सारा आदर्शवादी सत्यदर्शन किसी-न-किसी बिन्दु पर दृष्टिहीन होंने को बाध्य है।'[१]

यहीं से प्रेमचन्द ने अपनी संवेदना का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया था। 'गोदान' और 'मंगल सूत्र' तक आते-आते इनकी संवेदना इतनी बदल चुकी थी कि उनकी सृजन-प्रक्रिया में भी भारी अंतर आ गया था। 'इन कृतियों के अन्त में विराम-चिह्न की जगह प्रश्न-चिह्न लगा है, इनमें समाधान का संतोष न होकर समस्या का असंतोष है। आधुनिकता की चुनौती का साक्षात्कार है। प्रेमचन्द हल्कू के खेत को 'पूस की रात' में नील गाय से चरा हुआ पाते हैं, बदमस्त घीसू और माधव को 'कफन' में शराब के नशे में गिरा हुआ पाते हैं, किसान के रूप में 'होरी' को 'गोदान' के अन्त में धराशायी पाते हैं--- यह उपन्यास केवल होरी का गोदान नहीं है, प्रेमचन्द की आस्था का भी गोदान है, सदनों, निकेतनों, आश्रमों में लेखक की आस्था का गोदान है। इनका विश्वास सुधारवादी तथा गांधीवादी समाधानों से उठ गया है। इस संवेदना में मोहभंग की अनुभूति को आंका जा सकता है, पुरानी आस्था के टूटने के स्वरों को सुना जा सकता है, पुराने सत्य को खोने की पीड़ा का अनुभव किया जा सकता है।'[२]

---

१. श्री राजेन्द्र यादव, 'प्रेमचन्द के पात्र', (आमुख)।

२. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, 'आज का हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ-१०

डॉ. रामदरश मिश्र लिखते हैं- 'वे निश्चय ही विचारों और संस्कारों से मूल-भारतीय आदर्शों के पोषक थे, परन्तु एक यथार्थवादी कलाकार की हैसियत से समाज में व्याप्त पुराने-नये मूल्यों के संघर्षों, पुराने जर्जर मूल्यों के विघटन और नये भौतिकवादी मूल्यों की उत्तरोत्तर प्रतिष्ठा को आँख से ओझल नहीं कर सकते थे।---प्रेमचन्द ने बड़े ही स्पष्ट रूप धर्माधारित मूल्यों को विघटित और अर्थवादी मूल्यों को प्रतिष्ठित होते हुए देखा।'[१] 'गोदान' और 'कफन' में यह यथार्थ काफी तीखा होकर व्यक्त हुआ।

इस युग में मुख्यत: चार प्रकार के उपन्यास मिलते हैं- यथार्थवादी, स्वच्छन्दतावादी, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक उपन्यास। इनमें प्रथम दो को छोड़कर मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में आंचलिकता के गुणों के लिए पर्याप्त स्थान था और किसी सीमा तक उनमें आंचलिक विवरण आए भी, परन्तु उद्देश्य की भिन्नता के कारण आंचलिकता केवल एक सहायक उपादान बनकर ही रह गई। इस कोटि के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द और वृन्दावनलाल वर्मा का नाम विशेषत: लिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन दोनों उपन्यासकारों ने जिन पृष्ठभूमियों को आधार बनाकर उपन्यास लिखे हैं उनमें कथानक, चरित्र-चित्रण, वार्तालाप एवं वातावरण में उन तत्वों का समावेश हुआ है, जिनमें आंचलिकता या तो अंशत: है या उनमें आंचलिकता का आरोप करने का प्रयत्न हुआ है।

प्रेमचन्द के रचना-संसार में आंचलिक तत्वों का उपयोग अवश्य दिखाई पड़ता है। क्षेत्रीय स्तर पर फैली हुई सामाजिक कुप्रथाएँ अन्धविश्वास, धार्मिक पाखण्ड, छूआछूत, आर्थिक कारणों से चारित्रिक अपकर्ष के सटीक उदाहरण इनके साहित्य में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। छिट-पुट रूप से उत्सव, पर्व और प्रथाओं को स्वाभाविक चित्र भी मिल जाते है। प्रेमचन्द ने प्रकृति का भी सुन्दर वर्णन किया है। जैसे कि बसन्त में "होरी आम के बाग में पहुँचा, तो वृक्षों के नीचे तारे से खिले थे। उसका व्यथित निराश मन भी इस शोभा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा -

हिया जरत रहत दिन रैन।
आम की डरिया कोयल बोले तनिक न आवत चैन।"[२]

---

१. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा', पृष्ठ-४१
२. प्रेमचन्द: 'गोदान', पृष्ठ-२१९

प्रेमचन्द का उद्देश्य इन चित्रणों के द्वारा आंचलिकता का पोषण बिल्कुल नहीं है। आंचलिकता के ये तत्व कथा-परिवेश को उजागर करने के लिए वर्जित किए गये हैं। चूँकि प्रेमचन्द जिस निम्नमध्यवर्गीय परिवेश के कथाकार हैं उस परिवेश के जन-समूह की आस्था और विश्वास, आदर्श और यथार्थ के अन्तर्द्वंदों से उत्पन्न विडम्बनाओं में आंचलिक रंग तो होती ही है। यह रंग प्रेमचन्द ने स्वाभाविक ढंग से लिया है। इसमें उनका कोई उद्देश्य निहित नहीं है जिससें कोई विशेष शिल्प उत्पन्न हो सके और उनके रचना संसार को आंचलिक कहा जा सके।

आंचलिक उपन्यास का उद्भव एक अकस्मात् घटना नहीं है। उसके बनने में कई शक्तियों ने काम किया है जिसमें प्रेमचन्द का स्थान भी महत्वपूर्ण है। 'प्रेमचन्द की 'रंगभूमि' एवं 'गोदान' आदि रचनाओं को कुछ अंशो में डॉ. इन्दिरा जोशी ने आंचलिक माना है।'[1] राधेश्याम कौशिक 'अधीर' के अनुसार प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' और 'गोदान' आदि उपन्यासों में बनारस और उसके निकट के ग्रामीण अंचल के सजीव चित्र मिलते हैं।[2] डॉ. कान्ति वर्मा ने भी आंचलिकता के कुछ तत्व प्रेमचन्द के उपन्यासों में पाये हैं।[3] डॉ. माखनलाल शर्मा ने अवध के किसानों के जीवन पर आधारित 'गोदान' को आंचलिक उपन्यास माना है।[4] डॉ. गणेशन के अनुसार 'गोदान' आंचलिक न होकर कथायुक्त पनोरमिक उपन्यास है।[5] क्योंकि उसमें होरी की कथा के साथ विस्तृत सामाजिक वातावरण चित्रित किया गया है। प्रेमचन्द की प्रथम रचना 'वरदान'[5] में नगर के मध्यवर्गीय समाज की अपेक्षा ग्राम-जीवन और ग्राम-समाज का चित्र कहीं अधिक जीवन्त है यद्यपि वह वर्णित मात्र है, चित्रित नहीं। परन्तु यह कमी बाद के उपन्यासों में पूरी हो गई है। उनका 'प्रेमाश्रम' (१९२२ ई.) ''युगों से

---

१. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'साहित्य परिचय' आधुनिक साहित्य विशेषांक (जनवरी-१९६७), पृष्ठ-८१
२. डॉ. राधेश्याम कौशिक 'अधीर', 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास', पृ.१८६
३. डॉ. कान्ति वर्मा, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ-१८६
४. डॉ. मक्खनलाल शर्मा, 'हिन्दी उपन्यास: सिद्धांत और समीक्षा', पृ.२८१
५. डॉ. गणेशन, 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृष्ठ-१४०
६. 'वरदान', सेवासदन से पूर्व लिखा गया था परन्तु प्रकाशित उसके बाद हुआ।

उत्पीड़ित एवं पदमर्दित ग्रामीण चेतना का अग्रदूत होकर आया।''[1] इस उपन्यास में किसान की आर्थिक-सामाजिक दशा, उसके शोषक-तत्वों- कारिन्दों, जमींदारों, पटवारी, अफसरों, सिपाही, दरोगा, कचहरी, वकील, सूदखोर आदि की मनोवृत्ति एवं कार्य प्रणाली तथा उसकी स्वयं की भीरुता, मूक-सहिष्णुता, लाचारी, मर्यादा-आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। सारी कथा लखनपुर गांव से सम्बन्धित है जो जमींदार ज्ञान शंकर के अत्याचारों से त्रस्त है। ग्रामवासियों के शांत विरोध एवं सद्बुद्धिवादियों के प्रयत्नों से कल्याण का मार्ग प्रदर्शित किया गया है। 'रंगभूमि' (१९२४) पाण्डेपुर ग्राम से सम्बन्धित है। ग्रामीण समाज की प्रवृत्तियों का वर्णन इसमें भी मिल जाता है। 'कर्मभूमि' (१९३२) मुख्यतः राजनीतिक समस्याओं से सम्बन्धित है। राजनीतिक चेतना को प्रभावशाली बनाने के लिए सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्नों पर भी विचार किया गया है। मन्दिर में अछूतों का प्रवेश, धर्म का आडम्बर, महन्तों की विलासी वृत्ति, मजदूरों तथा किसानों की अवनत दशा आदि का उल्लेख किया गया है। स्वराज्य प्राप्ति के लिए देशव्यापी प्रबल आन्दोलन का समर्थन किया गया है। किन्तु यह सब बातें किसी भी अर्थ में या दृष्टि में आंचलिक नहीं है। इनका सम्बन्ध किसी अंचल-विशेष से नहीं, बल्कि पूरे भारत से है।

इस युग के दूसरे उपन्यासकार हैं- जयशंकर प्रसाद, जिनका 'तितली' उपन्यास ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इस उपन्यास में उन्होंने जमींदारों के कर्मचारियों की कूटनीति एवं धांधली, ग्रामीण जनता की सरलता तथा घोर स्वार्थवृत्ति, गांव की राजनीति, गांव के त्यौहार-उत्सव, सम्मिलित परिवारों की दुर्बलता आदि की झलक दिखाने का प्रयत्न किया है। 'तितली' में ग्राम जीवन का चित्रण प्रेमचन्द की तरह प्रसाद की मानसिकता का द्योतक नहीं बन पाया है। उन्होंने उसमें ग्रामीण और नगर-संस्कृतियों के सामंजस्य तथा पश्चिम के भौतिकवाद और पूर्व के अध्यात्मवाद के समन्वय में समष्टि कल्याण को देखने का प्रयत्न किया है। यों भी प्रसाद गांव के व्यक्ति कभी नहीं रहें। 'तितली' में आंचलिक उपन्यास के तत्वों को खोजना व्यर्थ है। प्रसाद मानवतावादी कलाकार हैं और एक विराट दार्शनिक भावभूमि पर वे उसके संधान का सफल प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं।

---

१. श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, 'हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ-८४

प्रेमचन्द के बाद जिस उपन्यासकार के उपन्यासों में आंचलिकता को ढूढ़ने का प्रयत्न परिश्रमपूर्वक हुआ है, वे है- श्री वृन्दावनलाल वर्मा। वर्मा जी के उपन्यास स्थानीय रंग प्रधान हैं, किन्तु वे आंचलिक नहीं हैं। इनकी दृष्टि व्यापक तथा विशाल है। डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने उन्हें आंचलिक उपन्यासों का जन्मदाता माना है। वे कहते है, 'वर्मा जी के बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यासों में तो यह आंचलिकता दूध-पानी की तरह घुलीमिली है कि उनके सामाजिक उपन्यासों में भी उसका निखरा हुआ रूप मिलता है।'[१] आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी उन्हें आंचलिक उपन्यासकार के स्थान पर आंचलिक की इस नई पद्धति के प्रवर्तक ही मानते हैं।[२] स्वयं वर्मा जी का अपने को आंचलिक उपन्यासकार तक सीमित रखना अभीष्ट नही रहा है क्योंकि उनके सामने समस्त देश का प्रेम भारतीय-संस्कृति एवं साहित्य का अनुराग तथा सामान्य जनता का दुःखदर्द ही आदर्श रहा है।[३]

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों के प्रायः सभी कथानक ऐतिहासिक है। इन उपन्यासों की कथाभूमि बुन्देलखण्ड है। उन्होंने अपने उपन्यासों की ऐतिहासिकता को सजीवता और प्रामाणिकता देने लिए आंचलिक पीठिका ग्रहण की है।[४] साथ ही बुन्देलखण्ड के समाज का विस्तृत परिचय भी दिया है और बुन्देलखण्डी भाषा[५] का प्रयोग कर उसे स्थानीय रंग भी दिया है। बुन्देलखण्ड का आंचलिक परिवेश साकार करने का प्रयत्न भी मिलता है। '--- चन्द्रमा की रिपटती हुई झिलमिल जान पड़ती थी। मानों चाँदी की चादरों के आवरों पर आवरे चिलचिला रहे हो --- चन्द्रिका खेत के हरे पौधों की अधपकी बालों को अपनी कोमल उँगलियों से खिला-सा रही

---

१. डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', 'वृंदावनलाल वर्मा व्यक्तितत्व और कृतित्व, पृष्ठ-२५५
२. डॉ. ह. के कडवे, 'हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति', पृष्ठ-१३४
३. वहीं, पृष्ठ-१३४
४. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई (१९४६), गढ़कुण्डार (१९२७), कचनार (१९४०), मृगनयनी (१९५०) आदि।
५. 'मोय जा विनती करने-मोय माफी मिल जाय तो कओ---।'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', पृष्ठ-९७

थी।'[1] लेकिन यहाँ भी समस्या है। वर्मा जी ने बुन्देलखण्ड के अंचल का प्रयोग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए किया है, न कि अंचल की भौगोलिक संस्कृति को रूपायित करने के लिए। ऐतिहासिक कथाकार का बल ऐतिहासिक घटनाओं को आधुनिक सन्दर्भों में प्रमाणित करने का अधिक रहता है। उनके उपन्यास ऐतिहासिक हैं आंचलिक नहीं।

इस काल के अन्य प्रमुख उपन्यासकारों के उपन्यासों के कथानक सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं। चण्डी प्रसाद हृदयेश का 'मनोरमा' (१९२४) यदि भाव-प्रधान उपन्यास है तो 'मंगल प्रभात' ( १९२६) धार्मिक एवं नैतिक उपन्यास की सीमा तक पहुँच जाता है। 'कौशिक' जी तो प्रेमचन्द के सबसे निकट हैं। उनके 'मां' (१९२९) में गोद लिए गये पुत्र तथा उसके सम्बन्धियों की कथा है और 'भिखारिणी' (१९२९) में एक दुखान्त प्रेम-गाथा। भगवती प्रसाद बाजपेयी ने 'मीठी चुटकी' (१९२७) में हिन्दू-विवाह व्यवस्था का समर्थन किया है, तो 'अनाथ-पत्नी' (१९२९) में भारतीय पत्नी के जीवन की परमुखापेक्षिता को भी दिखाया है। इनसे थोड़ा हटकर 'पतिता की साधना' (१९३६) का अन्त आदर्शवादी हो गया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास 'विदा' (१९२९) का स्वर भी आदर्शवादी है। सियारामशरण गुप्त के 'गोद' (१९३२) में भाभी के वात्सल्य स्नेह का वर्णन है और 'अन्तिम आकांक्षा' (१९३४) में एक घरेलू नौकर की कथा। गोविन्द बल्लभ पन्त के 'सूर्यास्त' (१९२२) 'प्रतिभा' (१९२४) और 'मदारी' भी सामाजिक समस्याओं को ही उद्घाटित करते हैं।

इस युग के उपन्यासों पर यदि समग्र रूप से विचार करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि सम्मिलित कुटुम्ब की विषमताएँ, नारी वर्ग की विभिन्न समस्यायें, धर्म एवं जातिगत भेदभाव, परम्परागत, सामाजिक कुरीतियां तथा अंध-विश्वास, धार्मिक-नैतिक आडम्बर, किसान-मजदूर की शोचनीय दशा, जमींदार-पूँजीपति की निरंकुशता, सरकारी कर्मचारियों के अन्याय-अत्याचार, विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलन, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, ऐतिहासिक एवं रोमानी यथार्थ, आदि में से एक या अनेक उपन्यासों के प्रतिपाद्य विषय बने हैं।

इन उपन्यासों में आंचलिकता का असंगत ग्रहण इस रूप में भले

---

१. 'मृगनयनी', पृष्ठ-१५

ही ढूंढ़ा जा सकता है कि उनके पात्र पिछड़े वर्ग या ग्रामीण समाज के है। इस युग में विषय के अनुरूप सामान्य जीवन के तथा उपेक्षित वर्ग के पात्रों को महत्व दिया जाने लगा। आंचलिक पात्रों के विकास की दिशा में यह पहला चरण था। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के होरी, धनिया, गोबर (गोदान), मनोहर (प्रेमाश्रम), सूरदास (रंगभूमि), अछूत गूदड़ (कर्मभूमि); देवीदीन खटिक, जग्गो (गबन); प्रसाद के महंगू महतो , गाला घंटी (कंकाल) आदि का अपना अलग वर्ग है। वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड के लोक-जीवन से पात्रों को चुनकर उन्हें ऐतिहासिक पात्रों के साथ गूंथ दिया है। ये पात्र निम्न एवं उपेक्षित वर्ग के हैं और अंचल-विशेष के जीवन का प्रतिनिधित्व करते है। ऐसे पात्रों में निन्नी, लाखी, पिल्ली, पोटा तथा गूजर अटल का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार इस काल में न केवल सामान्य कोटि के वरन् निम्न वर्ग के पात्रों को भी महत्व दिया गया है।

इन उपन्यासों में परिवेश के चित्रण ने अपनी स्वाभाविकता और सशक्तता में आंचलिकता का आभास दिया है, किन्तु सच यहीं है कि ये चित्र वातावरण की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। प्राकृतिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते है। इनमें कल्पना मिश्रित आलंकारिक शैली का प्रयोग[1] उन्हें आंचलिक शैली के अधिक निकट रख देता है, अथवा यों कह सकते हैं कि शैलीगत प्रयोग में इस युग के उपन्यासों में कहीं-कहीं आंचलिक उपन्यासों जैसे अत्यन्त विस्तृत विवरण मिलते हैं जो उनकी वर्णनात्मकता को आंचलिक उपन्यास की वर्णनात्मकता के निकट रखते है।

### प्रेमचन्दोत्तर युग में आंचलिकता

हिन्दी उपन्यास साहित्य में आंचलिकता के विकास क्रम के अन्तर्गत प्रेमचन्दोत्तर युग को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम स्वतंत्रता पूर्व युग (१९३६ से १९४७) और द्वितीय स्वातन्त्र्योत्तर युग (१९४७ से आज तक)। यह विभाजन इसलिए आवश्यक है, क्योंकि दोनों

---

१. "फागुन अपनी झोली में नव जीवन की विभूति लेकर आ पहुँचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों बौर के सुगन्ध बाँट रहे थे और कोयल आम की डालियों में छिपी संगीत का गुप्तदान कर रहीं थी",
-प्रेमचन्द: गोदान, पृष्ठ-२०६

की परिस्थितियाँ एक-दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। १९३६ से १९४७ तक की स्थिति जिस प्रकार की रही थी उसमें आंचलिक उपन्यासों की सर्जना के लिए स्थान नहीं था। देश में राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी चरम अवस्था में पहुँच चुका था। मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र सिद्धान्त के कारण साम्प्रदायिक शान्ति भी भंग हो चुकी थी और देश भयंकर आर्थिक संकट से गुजर रहा था। बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा, अभूतपूर्व मंहगाई प्रारम्भ हो गई और मूल्य-नियन्त्रण तथा राशनिंग व्यवस्था का श्री गणेश हुआ। शिक्षा-प्रसार, विज्ञान की खोजों तथा औद्योगीकरण के कारण नई-नई आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। इन सबका सम्मिलित प्रभाव साहित्य में यथार्थवादी साहित्य की सर्जना के रूप में प्रकट हुआ। उद्बुद्ध वर्ग पर मार्क्स के प्रभाव के साथ फ्रायडीनदर्शन का प्रभाव भी था। परिणाम स्वरूप यथार्थवादी उपन्यासों की बाढ़-सी आ गई और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, अतियथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद आदि विभिन्न धाराओं का विकास हुआ और सामाजिक जीवन का सत्य विविध रूपों में उद्घाटित किया जाने लगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के समग्र विकास की दृष्टि से गांवों के जीवन-यथार्थ की सही समीक्षा आवश्यक थी। इसके बिना गांवों के लिए विकास की आवश्यक रूप-रेखा का अंकन सम्भव नहीं था। इस महत्वपूर्ण पहलू के अतिरिक्त देश के संगठित स्वरूप तथा पारस्परिक एकता की भावना के विकास के लिए भी अत्यन्त आवश्यक था कि गांवों के आंचलिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाए। इन सभी के वर्णन में वहाँ की आंचलिक बोली का प्रयोग हो। स्वतन्त्रता बाद के उपन्यासकारों ने देश के जीवन की विशदता, उत्थान की सम्भावनाओं और अपेक्षाओं का विचार किया तथा अपनी औपन्यासिक कृतियों में इसका निरूपण किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत अंचल-विशेष के यथार्थ एवं वहाँ के जीवन-विधि को चित्रित करने की दिशा में लेखकों की रूचि जाग्रत हुई।

'आजादी के बाद की कथा-सर्जना का एक जीवन्त रूप ग्राम्य-जीवन के यथार्थ चित्रण की प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली उन कृतियों में दिखाई पड़ता है जिन्हें जाने-अनजाने आंचलिक कहकर सम्बोधित किया गया है। जहाँ तक प्रेमचन्द का सवाल है, गांवों की जिन्दगी को सजीव

रूप में पेश करते हुए भी, यदि गांव के समूचे परिवेश में, दिल-दिमाग से, और आँख भरकर उन्होंने किसी को देखा भी था तो गांव के उस अभिशप्त मनुष्य को, जो उनके लिए ग्रामीण जीवन की दीगर वास्तविकताओं से कहीं बड़ी वास्तविकता का प्रतिनिधि था, और उनकी मानवीय संवेदना का सारा ताप इसी मनुष्य को मिला भी। किन्तु इन आंचलिक कही जाने वाली रचनाओं में 'गांव' अपनी स्थानीय रंगत के साथ, रोमानी कलम का भी संस्पर्श पाते हुए उभरे।'[१]

सन् १९४२ में प्रकाशित 'बिल्लेसुर बकरिहा' नामक उपन्यास में निराला ने भी आंचलिकता का अंशभूत स्वरूप समाविष्ट किया है। यद्यपि निराला ने स्वयं इसे प्रगतिशील साहित्य का प्रथम चरण कहा है। किन्तु इसकी प्रगतिशीलता के बहुविध आयामों में ग्रामीण जीवन की पार्श्वभूमि में स्थित पात्र की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आवश्यकता और अवसर के अनुसार शिल्प-प्रयोग की नवीनता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ग्राम्य-जीवन की विकृतियों के साथ-साथ लेखक ने गांव की रुढ़िवादिता, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, खान-पान, कृषि-व्यवसाय, आदि का भी स्वाभाविक चित्रण किया है। इस उपन्यास की समस्या आंचलिक नहीं है, इसलिए आंशिक आंचलिक उपन्यास के रूप में इसे महत्व दिया जा सकता है। इस उपन्यास के पात्रों और परिवेश के सम्बन्ध में डॉ. बेचन कहते हैं- 'ये पात्र अंचल-विशेष के हैं अवश्य किन्तु मात्र आंचलिकता इनकी नियति नहीं है; इनका परिवेश भारत का सम्पूर्ण अंचल हो सकता है, जहाँ निराला के कुल्लीभाट, विल्लेसुर, चतुरी चमार आदि संधर्ष करते हुए दिखाई पड़ते हैं।'[१] इस प्रकार हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता के विकास क्रम के अन्तर्गत प्रेमचन्द और नराला जी के उपन्यासों को सीमित मात्रा में श्रेय दिया जा सकता है। स्वतन्त्रता के बाद की परिस्थितियों ने एक नई औपन्यासिक विधा को जन्म दिया जिसे आंचलिक उपन्यास के नाम से पुकारा गया। आंचलिक उपन्यासों की जन-चेतना इन्हें प्रेमचन्द से जोड़ती है किन्तु इसका स्वरूप और दृष्टि उनसे बहुत भिन्न है। 'नयी कविता' और 'नयी कहानी' में

---

१. नामवर सिंह (सं.), आलोचना 'प्रेमचन्द स्मृति अंक', अक्टूबर-७९ -जनवरी ८०, पृष्ठ-१३३

२. डॉ. बेचन, 'आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास' पृ.१९१

जिस प्रामाणिक अनुभव की अभिव्यक्ति हुई वहीं प्रकारान्तर में आचंलिक उपन्यासों में रूपायित हुआ।'[1] श्री महेन्द्र चतुर्वेदी आंचलिक उपन्यासों को प्रमुख रूप से स्वातन्त्र्योत्तर युग की सृष्टि मानते है "यों तो हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता का पुट पहले भी रहा है; उसके कुछ तत्व बीज-रूप में विद्यमान रहे है किन्तु उसका पूर्ण विकास हिन्दी उपन्यास की अभिनव सिद्धि ही है।"[2] इसकी पुष्टि डॉ. कान्ति वर्मा ने भी की है- "कहने को तो आंचलिकता का हल्का-हल्का पुट पूर्व-युग के उपन्यासों में भी मिल जाता है, लेकिन उसका सशक्त एवं पूर्व विकसित रूप स्वातन्त्र्य-युग के उपन्यासों में ही हुआ।"[3] एक विशिष्ट भू-खण्ड जन्य अनुभव ने कथा-विन्यास, चरित्र-रचना और शिल्प नियोजन को नवीनता प्रदान की। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पिछड़े हुए गांवो तथा इलाकों को, जो अपने अस्तित्व का मान हुआ, उसने ही उपन्यासकार का ध्यान एक भू-भाग की समूची जिन्दगी को उसकी समग्र संश्लिष्टता के साथ चित्रित करने की प्रेरणा दी। प्रजातन्त्र के प्रकाश में यह जन-जन का अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होना भी था। अपने-अपने व्यक्तित्व बनाये हुए सामूहिकता से जुड़ना भी था।

डॉ. रांगेय राघव ने प्रेमचन्द युग की परिस्थितियों से स्वातन्त्र्योतर युग की परिस्थितियों की भिन्नता की ओर संकेत करते हुए लिखा है- "प्रेमचन्द के समय में राष्ट्रीय आंदोलन विदेशियों के विरुद्ध था अत: उस समय राष्ट्रीयता का ही महत्व उनके उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचन्द आदर्शवादी भी थे। गांव की बहुत सी असलियत वे इसी से स्पष्ट नहीं लिख सके थे क्योंकि उस समय उनकी समस्या राष्ट्रीय आंदोलन को बल देने की थी। किन्तु अब युग प्रेमचंद से आगे है और केवल शोषण का आर्थिक पहलू ही देखना काफी नहीं है। शहरों में बैठनेवाले आधुनिकता के नजरिये से सबकुछ देख डालते हैं। पर असली भारत गांवों में है जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त है। वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित है। मैने उनको स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।"[4]

---

१. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा', पृष्ठ-६५
२. श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, 'हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण', पृष्ठ-१८८-८९
३. डॉ. कान्ति वर्मा, 'स्वातन्त्र्योतर हिन्दी उपन्यास',(प्राक्कथन), पृष्ठ-८
४. डॉ. रांगेय राघव; 'कब तक पुकारूँ', भूमिका

इस बदले हुए आधुनिकता-बोध ने उपन्यास-शिल्प में काफी परिवर्तन और परिमार्जन किया। उसकी नवीनता अनेक रूपों में लक्षित हुई, उसमें सूक्ष्म संवेदनाओं को स्थान मिला। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के उपन्यासकारों में एक ओर शिल्प का तादात्म्य मानव-जीवन के विविध पक्षों में हुआ, तो दूसरी ओर उसके अन्तर और वाह्य का सामन्जस्य करने का प्रयत्न भी किया गया। शिल्प सम्बन्धी एक और विशेषता उभरकर आई, वह है- वर्णनात्मकता में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर धरातलों को पहचानना। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न जन-जातियों और अंचलों से परिचय पाया जाने लगा। रांगेय राघव ने नटों को चुना, तो राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' ने बस्तर के गोड़ों को और उदयशंकर भट्ट ने बरसोंवा के मछुवारों को। इस स्थिति के पीछे मानवतावादी विचारधारा का ही हाथ था। प्रारम्भ में गांधीजी एवं रवीन्द्र द्वारा प्रवाहित मानवतावाद की धारा को काल की गति ने अवरुद्ध कर दी थी परन्तु १९४७ के बाद वह नवीन वेग से पुनः प्रवाहित होने लगी और देश के अनजान अंचल उसमें स्नात होकर निखरने लगे।

यथार्थ के आग्रह का भी आंचलिक प्रवृत्ति के विकास में योग रहा। देश के अंचल एवं आंचलिक जातियाँ भी उतनी ही यथार्थ थी जितने औद्योगिक, ऐतिहासिक अथवा ग्रामीण क्षेत्र तथा किसान, मजदूर एवं समृद्ध लोग। अतः यह स्वाभाविक भी था कि किसान, मजदूर, मध्यवर्ग तथा देश के प्रसिद्ध एवं ज्ञात स्थानों के कथानकों के उपरांत अज्ञात अथवा अल्प-ज्ञात स्थानों एवं समाज की ओर यथार्थवादी कलाकार उन्मुख होता। ऐसी स्थिति आई भी क्योंकि "हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता का स्वरूप स्थिर होने तक भारतीय समाज तथा जन-जीवन का गठन सुव्यवस्थित रूप में होने लगा था। संस्कृति के प्राचीन मूल्यों का पुनः संस्कार हो रहा था। अतः लेखक की मानसिक अवस्था में भी सन्तुलन आने लगा था उसकी दृष्टि विस्तार पाने लगी थी। उसका ध्यान भारत की लोक-संस्कृति तथा विभिन्न भू-भागों के जीवन की ओर आकृष्ट हुआ और उसने किसी अंचल के लोकाचार, परम्परा, जाति-व्यवस्था, रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल आदि सभी आंचलिक तत्वों के सम्मिश्रण से इस नई प्रवृत्ति को जन्म दिया।"[1]

---

१. डॉ. कान्ति वर्मा, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास' (प्राक्कथन),पृष्ठ-९

'आंचलिकता' और आंचलिक उपन्यासों के विकास एवं उसे एक निश्चित नाम देने में 'रेणु' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यथार्थवाद के अन्वेषण की दिशा में 'मैला आंचल एक' स्तुत्य प्रयास कहा जा सकता है। जैसा कि डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत का भी मत है- "यथार्थवाद के नए क्षितिज खोजने के प्रयत्न के रूप में रेणु लिखित 'मैला आंचल' का बहुत बड़ा महत्व है। इसके द्वारा प्रस्तुत किए गए यथार्थवाद को आंचलिक यथार्थवाद की संज्ञा दी जाने लगी है। इसे आंचलिक यथार्थवाद इसलिए कहते हैं कि इसमें एक अंचल के सम्पूर्ण जीवन का संश्लिष्ट और यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है।"[१]

## निष्कर्ष

प्रेमचन्द-पूर्व युग के उपन्यासकारों के औपन्यासिक कृतियों में मुख्यतः तीन प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, प्रथमतः भावनापूर्ण एवं रोमानी उपन्यास लिखकर पाठकों का मनोरंजन करना; द्वितीय सुधारवादी भावनाओं को जगाकर लोगों को शिक्षा देना, और तृतीय, उपयोगिता का लाभ उठाते हुए हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरने के साथ-साथ हिन्दी पाठकों की एक बड़ी संख्या भी तैयार करना था। मनोरंजन और शिक्षा के उद्देश्य को पूरा करने के लिए इन उपन्यासकारों ने जो कथ्य या विषयवस्तु चुना है उसमें अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति की सहज संवेद्यता के लिए कोई स्थान नहीं था। उद्देश्य और प्रवृत्ति भी जिस रूप में निश्चित हुई थी उसमें आंचलिकता के समावेश का प्रश्न ही नहीं उठता। उसका कुछ सम्बन्ध अंग्रेजी के रोमांटिक आंदोलन से दिखाई पड़ता है। इन दोनों प्रवृत्तियों में यथार्थ के दर्शन नहीं होते जो कि आंचलिक उपन्यास के लिए अपेक्षित होता है। आंचलिक उपन्यासकार का लक्ष्य अंचल की समग्रता का साक्षात करना है। इन उपन्यासों में अंचल का तो प्रश्न ही नहीं है, प्रकृति का भी पृष्ठभूमि के रूप में बहुत कम ग्रहण हुआ है।

प्रेमचन्द-युग में हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण किसान समुदाय अपने पूरे अर्थो में किसान भी नहीं, एकदम भूमिहीन खेत मजदूर अथवा निरन्तर

---

१. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त', पृष्ठ-४४१

सर्वहारा बनते जा रहे सीमांतक छोटे किसानों की क्रान्तिकारी उद्घोषणा के साथ यथार्थवाद का सूत्रपात होता है। इसका श्रेय प्रेमचन्द को जाता है क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम ग्रामीण जीवन को निकटता से देखा, पहचाना और उसी को अपने उपन्यासों का आधार बनाया। हालाँकि पिछली परम्परा का प्रभाव होने के कारण प्रेमचन्द का दृष्टिकोण उनके प्रारम्भिक रचनाओं में सुधारवादी और आदर्शोन्मुख है। परन्तु कुछ समय बाद ही उन्हें यह आभास हो जाता है कि आदर्शवाद के मार्ग पर चलकर तत्कालीन समस्याओं का निदान नहीं हो सकता। अतः आदर्शवाद के प्रबल पक्षधर होने पर भी प्रेमचन्द यथार्थवाद को नकार नहीं सके और अपने अन्तिम चरण के कृतियों में भारतीय समाज के अन्तरंग और बहिरंग परिवेश को समूची मार्मिकता और सच्चाई के साथ ग्रहण किया है। इस कठोर यथार्थ का दर्शन 'पूस की रात', और 'कफ़न' जैसी कहानियों तथा 'गोदान' में होता है।

सन १९३६ में प्रकाशित 'गोदान' की कथावस्तु में ग्रामीण जीवन के यथार्थ का निरूपण हुआ है। उपन्यास में 'होरी' की कथा आंचलिक है। भले ही जिस अंचल का वह व्यक्ति है वह अंचल-विशेष के स्थान पर सामान्य हो, सम्पूर्ण राष्ट्र के गांवों के आंचलिक वातावरण का प्रतिनिधि चरित्र हो। इसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास ऐतिहासिक अवश्य हैं लेकिन उसमें भी आंचलिकता के तत्वों का समावेश है।

लगभग १९३० ई. के बाद लिखे जाने वाले हिन्दी उपन्यासों में आंचलिक चित्रण का प्रवेश दिखाई देने लगता है जिसमें सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय आंदोलन आदि विषयों को केन्द्र बनाया जाने लगा था। हिन्दी लेखक ग्रामीण वातावरण के जीवन्त यथार्थ का चित्रण कर सार्थक दिशा में रचना कर रहे थे। यह कार्य कहानी की दिशा में भी हो रहा था। चूँकि भारत की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है, भारत ग्राम्य प्रधान राष्ट्र है इसलिए यह अस्वाभाविक कार्य नहीं था। फिर भी इस लेखन का उद्देश्य आंचलिक उपन्यास लिखना नहीं था। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास-साहित्य में आंचलिकता का जो प्रारम्भिक रूप १९३० के आस-पास दिखालाई पड़ता है उसे प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य में

आंशिक विकास मिला। किन्तु विकास की सही दिशा प्रेमचन्दोत्तर युग में ही मिली। इस युग में सर्व प्रथम नागार्जुन ने आंचलिकतावादी भूमिका पर आंचलिकता के प्राय: सभी तत्वों के समावेश द्वारा आंचलिक उपन्यासों की रचना का मार्ग प्रशस्त किया।